MPAMI-602

स्वरवाद्य–रागों और तालों का अध्ययन **III**

एम0पी0ए0 संगीत – तृतीय सेमेस्टर

संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग

मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

MPAMI-602

स्वरवाद्य–रागों और तालों का अध्ययन III

एम0पी0ए0 संगीत – तृतीय सेमेस्टर

संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग

मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाईपास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पीछे,
हल्द्वानी, जिला नैनीताल, पिनकोड–263139
फोन नं0 : 05946–286000 / 01 / 02
फैक्स नं0 : 05946–264232,
टोल फ्री नं0 : 18001804025
ई–मेल : info@uou.ac.in
वेबसाईट : **www.uou.ac.in**

MPAMI-602

अध्ययन मंडल

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो0 एच0 पी0 शुक्ल(संयोजक)
निदेशक–मानविकी विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 विजय कृष्ण(सदस्य)
पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग,
डी0एस0बी0 कैम्पस, नैनीताल
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

डॉ0 आशा पाण्डे कृष्ण(सदस्य)
विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग,
एच0एन0बी0 गढ़वाल विश्वविद्यालय,
श्रीनगर

डॉ0 मल्लिका बैनर्जी(सदस्य)
संगीत विभाग,
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त
विश्वविद्यालय, दिल्ली

द्विजेश उपाध्याय(सदस्य)
सहायक प्राध्यापक(ए.सी.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन, प्रूफ रिडिंग एवं फार्मेटिंग

प्रदीप कुमार
सहायक प्राध्यापक,
संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

द्विजेश उपाध्याय
सहायक प्राध्यापक(ए.सी.),
संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

जगमोहन परगांई
सहायक प्राध्यापक(ए.सी.),
संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

अशोक चन्द्र टम्टा
सहायक प्राध्यापक(ए.सी.),
संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रकाश चन्द्र आर्या
सहायक प्राध्यापक(ए.सी.),
संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संपादन

डॉ0 विजय कृष्ण
पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग,
डी0एस0बी0 कैम्पस, नैनीताल,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

डॉ0 चन्द्रशेखर तिवारी
वरिष्ठ संगीतज्ञ,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 रेखा साह
पूर्व विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग,
डी0एस0बी0 कैम्पस, नैनीताल,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

द्विजेश उपाध्याय
सहायक प्राध्यापक(ए.सी.)–संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

1.	डॉ0 पंकज माला शर्मा	इकाई 1 व 2
2.	डॉ0 रेखा शाह	इकाई 3
3.	श्री सतीश श्रीवास्तव	इकाई 4
4.	डॉ0 चन्द्रशेखर तिवारी	इकाई 5, इकाई 6
5.	डॉ0 विजय कृष्ण	इकाई 7

कापीराइट : @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
संस्करण : सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशन वर्ष : जुलाई 2021,
प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल–263139
ई–मेल : books@uou.ac.in

इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी, चकमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

MPAMI-602

एम0पी0ए0 संगीत – तृतीय सेमेस्टर
स्वरवाद्य–रागों और तालों का अध्ययन III – एम0पी0ए0एम0आई0–602

इकाई	खण्ड/इकाई का नाम	पृष्ठ
इकाई 1	जाति गायन, राग गायन एवं राग के लक्षण; सारणा चतुष्टयी का विस्तृत अध्ययन।	01–16
इकाई 2	प्रबन्ध का विस्तृत अध्ययन एवं प्रबन्ध की ध्रुपद व ख्याल से तुलना।	17–30
इकाई 3	पाठ्यक्रम के रागों का पूर्ण वर्णन, तुलना एवं स्वर समूह द्वारा राग पहचानना।	31–42
इकाई 4	गायन एवं तंत्रकारी पद्धति; वादन में आलाप, जोड आलाप, जोड झाला एवं झाला; मिजराब के बोलों के विभिन्न प्रकार के छन्दों का अध्ययन।	43–52
इकाई 5	पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत, स्थाई व अन्तरे के तोडे आदि को लिपिबद्ध करना।	53–70
इकाई 6	पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत, स्थाई व अन्तरे के तोडे आदि को लिपिबद्ध करना।	71–85
इकाई 7	पाठ्यक्रम की तालों का परिचय व तालों के ठेकों को लयकारी (दुगुन, तिगुन, चौगुन, आड, कुआड व बिआड) सहित लिपिबद्ध करना।	86–99

इकाई 1 – जातिगायन, राग गायन एवं राग के लक्षण ; सारणा चतुष्टयी का विस्तृत अध्ययन

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 जाति गायन
1.4 राग गायन एवं राग के लक्षण
1.5 सारणा चतुष्टयी
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रदर्शन कला–संगीत में स्नातकोत्तर, तृतीय सेमेस्टर (एम0पी0ए0एम0आई0–602) पाठ्यक्रम की पहली इकाई है। आप प्रथम प्रश्न पत्र में भारतीय एवं पाश्चात्य संगीत के स्वर सप्तक, स्वर स्थान व आंदोलन संख्या, आलाप व तान, ध्रुपद व ठुमरी के विषय में जान चुके होंगे। आप रामायण व महाभारत काल में संगीत की स्थिति तथा शारंगदेव द्वारा संगीत रत्नाकर में वर्णित संगीत से भी परिचित हो चुके होंगे। आप दक्षिण भारतीय संगीत, शास्त्रीय–संगीत और लोक संगीत को भी समझ चुके होंगे।

इस इकाई में जातिगायन, राग गायन एवं राग के लक्षणों को विस्तार से बताया गया है। इस इकाई में सारणा चतुष्टयी का विस्तृत अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप प्राचीन गायन में प्रचलित जाति गायन के बारे में जान सकेंगे। आप राग गायन व राग के लक्षणों से भी परिचित हो सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

1. प्राचीन गायन में प्रचलित जाति गायन के विषय में जान सकेंगे।
2. राग गायन को जान सकेंगे।
3. राग के लक्षणों को जान सकेंगे।
4. भरत द्वारा प्रतिपादित सारणा चतुष्टयी के बारे में भी जान सकेंगे।

1.3 जाति गायन

रंजन और अदृष्ट अभ्युदय को जन्म देते हुए विशिष्ट स्वर ही विशेष प्रकार के सन्निवेष से युक्त होने पर 'जाति' कहे जाते हैं। जाति प्राचीन काल में प्रचलित गायन शैली थी। संगीत रत्नाकर के अनुसार जाति का संगीत के अन्तर्गत स्थान वेद मन्त्रों के तुल्य है। जिस प्रकार वेदमन्त्रों का स्वर, वर्ण आदि के सम्बन्ध में उल्लंघन हानि की संभावनाओं से भरा रहता है उसी प्रकार जातियों का प्रयोग भी नियत स्वर, पद तथा ताल के विपरित नहीं किया जा सकता। भरत ने जाति का निरूपण किया है। भरत के समय में जो गान क्रियायें प्रचलित होगी, जिस प्रकार के गीतों का प्रयोग नाट्य में होता होगा वे सब जाति के अन्तर्गत विभाजित किये गये हैं। भरत के द्वारा जाति की व्याख्या नहीं दी गयी है। कहने का अभिप्राय यह है कि भरत ने जाति की परिभाषा नहीं दी है। जाति लक्षण तथा जातियों के भेदों का उल्लेख किया है। मतंग के द्वारा अपने ग्रन्थ बृहद्धेशी में लिखित वचनों से जाति की परिभाषा पर काफी प्रकाश पड़ता है जो इस प्रकार से है :–

1. श्रुतिग्रहस्वरादिसमूहाज्जायन्त अतो जातय इत्युच्यते। (वृ0द्वि0 खण्ड, अनु0 118)
   अथार्त् श्रुति और ग्रह स्वरादि के समूह से जो जन्म पाती है, उन्हें जाति कहा है। अथवा
2. यस्माज्जायते रस प्रतीतिरारम्यते (वा) इति जातयः (वही)
   अर्थात् – जिससे रसप्रतीति की उत्पत्ति अथवा आरम्भ हो, उसे जाति कहा है। अथवा
3. सकलस्य रागादेर्जन्म हेतुत्वाज्जातय इति। अर्थात् या फिर सब रागों के जन्म का हेतु होने के कारण जाति कहा गया है।
4. अथवा यद्वा जातया इति जातयः। यथा नराणां ब्राह्मणत्वादयो जातयः। (वही)
   अर्थात् – जाति का सामान्य अर्थ लिया, जैसे कि मनुष्यों में ब्राह्मणत्व आदि जातियॉ होती है उसी प्रकार स्वर रूपों को शास्त्रीय रूप देते समय उन्हें जाति संज्ञा देना शायद उचित समझा होगा।

नान्यदेव जाति की व्याख्या इस प्रकार से की है– '' रस भाव प्रकृति आदि की विशेष प्रतिपत्ति जातियों के द्वारा होती है।

अभिनवगुप्त ने जाति की व्याख्या करते हुए कहा है कि स्वर ही जब विशिष्ट बन कर सन्निवेश गत होकर रंजकता उत्पन्न करते हैं तो जाति कहलाते हैं और हमारे अनजानेपन में इन सन्निवेशों द्वारा मन बुद्धि और आत्मा का उत्कर्ष होता है।

अब आप समझ गये होंगे कि भरत ने जाति की परिभाषा तो नहीं दी लेकिन जाति के लक्षण तथा जाति के भेदों का वर्णन किया है जिनके आधार पर और परवर्ती शास्त्रकारों की व्याख्याओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भरत के समय शास्त्रीय गेय विधा को जाति के नाम से जाना जाता था।

जातियों के मुख्य भेद – जातियों के मुख्य दो भेद माने गये हैं – शुद्धा एवं विकृता। कुल मिला कर 18 जातियाँ मानी गयी है। शुद्धा जातियों के नाम सात शुद्ध स्वरों के आधार पर रखे गये। षड्ज से षाड्जी, ऋृषभ से आर्षभी, गांधार से गांधारी, मध्यम से मध्यमा, पंचम से पंचमी, धैवत से धैवती तथा निषाद से निषादी। इनमें चार शुद्धा जातियां षड्ज ग्राम की हैं तथा तीन शुद्धा जातियां मध्यम ग्राम की है। षाड्जी, आर्षभी, धैवती तथा निषादी ये चार जातियां षडजग्राम की हैं तथा गांधारी, मध्यमा तथा पंचमी ये तीन शुद्धा जातियां मध्यम ग्राम की है। यूं तो षड्ज तथा मध्यम ग्राम की मूर्च्छनाओं में ग्रह, अंश, न्यास आदि के नियम लगाने से 14 जातियां बनायी जा सकती हैं किन्तु भरत ने केवल सात ही शुद्धा जातियां कही है। इसका कारण यह हो सकता है कि यदि दोनों ग्रामों की मूल स्वर व्यवस्था देखी जाये तो सूक्ष्म अंतर त्रिश्रुति और चतुःश्रुति पंचम का है। इसी प्रकार से त्रिश्रुति और चतुःश्रुति धैवत का है। इसके अतिरक्ति यदि दोनों ग्रामों की मूर्च्छनाओं को वीणा पर बजाया जाये तो सूक्ष्मांतर के सिवाय दोनों ग्राम की जातियों में साम्य मिलता है। स्वर सप्तक की पुनरावृत्ति न हो, इसीलिये सात शुद्धा जातियां ही मानी गयी है।

शुद्धा जातियों के लक्षण – शुद्धा जातियों के निम्न लिखित लक्षण हैं :–

1. शुद्धा जातियों में आरोह–अवरोह सम्पूर्ण होता है।
2. जिस स्वर से जाति का नाम रखा गया है, वही स्वर उसका ग्रह, अंश एवं न्यास होता है। जैसे षाडजी जाति का नाम षड्ज स्वर से है तो इस जाति का षड्ज ही ग्रह, अंश एवं न्यास होगा।
3. शुद्धा जातियों में न्यास स्वर नियम से मन्द्र में होना चाहिये। (मन्द्र अर्थात् जिस स्वर पर मन्द्र सप्तक समाप्त होता है यानि मध्य सा)

विकृता जातियों के लक्षण – जाति के दूसरे मुख्य भेद विकृता के विषय मे भरत ने इस प्रकार कहा है कि शुद्धा जातियों के लक्षणों में से न्यास को छोड़ कर एक, दो या उसके अधिक लक्षणों में विकार आने से विकृता जाति का निर्माण होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि विकृता जातियों में न्यास स्वर वही रहता है जो शुद्धा जातियों में होता है, उसमें परिवर्तन नहीं किया जाता। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि विकृता जातियां दो प्रकार से बनती हैं – प्रथम, पूर्णत्व सम्बन्धी नियम को भंग करने से यानि औड़व–षाड़व रूप बनाने से। द्वितीय, जिस स्वर पर से जिस शुद्धा जाति का नामकरण हुआ है उसी स्वर को ग्रह, अंश, न्यास व अपन्यास मानने का नियम उल्लंघन करने से।

दशविध जाति लक्षण – भरत ने जाति के लिये दस लक्षण बताये हैं। भरत के अनुसार मूर्च्छना के स्वरसप्तक में निम्नलिखित दस लक्षणों के लगने से ही वह गानोपयोगी होकर जाति कहलाती है :–

1. ग्रह
2. अंश
3. तार
4. मन्द्र
5. न्यास
6. अपन्यास
7. अल्पत्व
8. बहुत्व
9. षाडवित
10. औडुवित

ग्रहांशौ तारमन्द्रो च न्यासोऽपन्यास एव च।
अल्पत्व च बहुत्व च षाडवौडुविते तथा।। (नाट्शास्त्र 28. 36)

इन दस लक्षणों की व्याख्या भरत एवं मतंग के अनुसार इस प्रकार है :–

1. ग्रह – ग्रह स्वर को भरत ने तीन प्रकार से परिभाषित किया है–
   1. सब जातियों का जो अंश स्वर है, वही ग्रह स्वर कहलाता है।
   2. गायन के प्रारम्भ में जिस स्वर का प्रयोग होता है वह अंश स्वर विकल्प से ग्रह कहलाता है।
   3. जहाँ से जाति का प्रयोग प्रारम्भ किया जाये उसे ग्रह कहते हैं।

2. **अंश** – दूसरा लक्षण 'अंश' है। अंश स्वर के निम्नलिखित दस लक्षण भरत ने बताये हैं :–
   1. जिस स्वर पर जाति का रंजक स्वरूप निर्भर करता है।
   2. जो स्वर राग रस, रंग, रस के उत्पादन में मुख्यतः उपयोगी हो।
   3–4. गायन क्रिया में जिस स्वर का संवादी की दृष्टि में प्रसार पाँच–पाँच स्वर तक नीचे व ऊपर हो।
   5. जो अन्य स्वरों के प्रयोग से आवृत हो।
   6. जो अन्य साथ संवाद अनुवाद करने वाले अन्य स्वर भी बलवान हो।
   7–8–9–10. ग्रह, न्यास, अपन्यास और विन्यास का बार–बार उच्चार होते समय जो स्वर दृष्टिगोचर होता है।

इस प्रकार इन दस लक्षणों से युक्त स्वर, अंश स्वर कहलाता है। यह व्याख्या भरत के अनुसार है।

मतंग ने अंश स्वर की व्याख्या कुछ भिन्न प्रकार से की है। उसे भी देख लेना यहाँ उचित होगा। मतंग के अनुसार 'अंश' के लक्षण इस प्रकार से हैं :–

1. जिससे गीत का आरम्भ हो परन्तु फिर भी जो ग्रह और स्वरित से भिन्न हो।
2. जिससे राग का स्वरूप स्पष्ट दिखायी पड़े।
3–4. जिसके द्वारा तार और मन्द्र सप्तक के स्वर प्रकट होते हैं अर्थात् जिस स्वर के आधार पर मन्द्र तथा तार सप्तक के स्वर निश्चित किये जाते हैं।
5. जिसके स्वर के आगे 5–6 स्वरों तक आरोह हो सकता है।
6. जिस स्वर के सात स्वरों तक नीचे अवरोह हो सकता है।
7–8. जो तार और मन्द्र स्वरों को प्रयोग में लाने के नियम बनाने वाला हो।
9. जिसका अधिक प्रयोग हो।
10. केन्द्र बिन्दु के रूप में जो स्थित हो।

इस अध्ययन के पश्चात् तथा शास्त्रों के अध्ययन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि हमारे शास्त्रों में अंश शब्द का तीन प्रकरणों में भिन्न–भिन्न अर्थों में प्रयोग मिलता है।

1. प्रथम – संवाद तथा अनुवाद लक्षणों के प्रकरण में।
2. द्वितीय – जाति के दस लक्षणों के प्रकरण में। तथा
3. तृतीय – अलंकार प्रकरण में।

संवाद, अनुवाद और विवाद के प्रकरण में – जब किसी स्वर को आधार मानकर दूसरे स्वर का संवाद, अनुवाद या विवाद सम्बन्ध स्थापित किया जाये तो उसी स्वर को भरत ने अंश या वादी स्वर की संज्ञा दी है। इस आधार स्वर को मानने के लिये दो–दो स्वरों की जोड़ियां आवश्यक मानी है क्योंकि कोई भी अकेला स्वर संवाद, अनुवाद या विवाद का अधिकारी नहीं हो सकता। उदाहरण के लिये 'सा– म' की जोड़ी में सा को अंश या आधार मानने से सा वादी होगा और 'म' संवादी होगा।

आधुनिक संगीतशास्त्र के अनुसार वादी स्वर की परिभाषा में स्वरांतराल सम्बन्धी शास्त्रीय अर्थ की सन्धि नहीं रह पायी। क्योंकि भातखण्डे जी ने अंश स्वर का वास्तविक अर्थ न लेते हुए राग के प्रमुख स्वर को वादी, उससे कम प्रमुख स्वर को संवादी, सहायक स्वरों को अनुवादी तथा विरोधी स्वरों को विवादी कहा है। संवादी की संगति न रहने से आधुनिक कुछ एक रागों में संवाद सम्बन्ध प्राप्त नहीं होता। जैसे श्री राग मे कोमल रे और पंचम को वादी–संवादी बताया है। ऐसे ही अन्य स्वर जोड़ियां और भी कुछ एक रागों में है। राग लक्षण में वादी, संवादी अनुवादी एवं विवादी का कथन अशास्त्रीय है, क्योंकि कुछ स्वर जोड़ियों में संवादी हो ही नहीं सकता जैसे कि उपरोक्त 'श्री' राग में बताया गया है। पंडित ओंकारनाथ ठाकुर और अन्य आधुनिक संगीतज्ञों के अनुसार भरत के द्वारा कहे गये दस जाति लक्षणों का ही राग लक्षण में प्रयोग उचित और ग्राह्य है।

जाति के दस लक्षणों के प्रकरण में – अंश, जाति के दस लक्षणों में से एक लक्षण माना गया है। जबकि अंश स्वर जाति या राग में केन्द्रस्थ या प्राण स्वरूप रहता है।

मंतग द्वारा अलंकार प्रकरण में अंश का प्रयोग – कुछ एक अलंकारों के लक्षण देते हुए मतंग ने अलंकार के प्रत्येक टुकड़े के आरंम्भ स्वर को अंश कहा है। उदाहरण के लिये – 'तारमन्द्र प्रसन्न' एक अलंकार है। इसका लक्षण करते हुए मतंग कहते हैं – अंश से चतुर्थ या पंचम स्वर पर जाकर जब पुनः मन्द्र स्वर में लौट आया जाये तब तारमन्द्र प्रसन्न अलंकार होता है। जैसे 'सा' से 'प' तक आरोह करके पुनः अंश स्वर 'सा' पर लौट आये। एक अन्य उदाहरण में 'विद्युत' अलंकार का लक्षण करते हुए मतंग कहते हैं – अंश स्वर का चार बार उच्चार करके उसके बाद वाले दो स्वरों का द्रुत उच्चार करने से विद्युत अलंकार होता है जैसे सासासासारेग, रेरेरेरेगम इत्यादि।

उक्त दोनों उदाहरणों में अलंकार के टुकड़े के आरम्भ स्वर को अंश स्वर कहा है। इस प्रकार 'अंश' शब्द का तीन अर्थों में प्रयोग हमने देखा उसी प्रकार जाति लक्षणों में भी अंश को तीन प्रकार से स्पष्ट किया है–

1. अंश को ग्रह विकल्पित कह करके उसे ग्रह के रूप में जाति का आरम्भ स्थान माना है।
2. अंश को जाति का प्राण स्वर या केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।
3. तीसरा अंश का सम्बन्ध न्यास के साथ जोड़ा गया है। जैसे समाप्ति में आया हुआ अंश ही न्यास स्वर कहलाता है।

अब आप समझ गये होंगे कि प्रारम्भ स्थान, प्रधान स्वर तथा समाप्ति स्थान, तीन पहलुओं में अंश की व्यापकता बताई गयी है।

3–4. तार–मन्द्र लक्षण – भरत ने जाति का तीसरा तथा चौथा लक्षण तार व मन्द्र बताया है। बात ध्यान देने योग्य है कि मन्द्र तार से मन्द्र या तार स्थान (सप्तक) अभिप्रेत नहीं है अपितु अंश, न्यास व अपन्यास स्वर से नीचे उतरने को मन्द्र तथा ऊपर चढ़ने को तार कहा गया है। इस लक्षण में यह स्पष्ट किया गया है कि जातियों का गायन केवल मध्यसप्तक में ही सीमित नहीं था अपितु तार–मन्द्र स्वरों में भी उसकी व्याप्ति थी। तार–मन्द्र की व्याख्या देते हुए भरत ने कहा है कि जाति गान में त्रिविधा तार गति और त्रिविधा मन्द्रगति होती थी।

त्रिविधा तार गीत – जिस जाति में जो अंश स्वर है उस अंश स्वर से चार पांच या सात स्वर तक ऊपर जाने की मर्यादा उन्होंने बांध दी थी।

त्रिविधा मन्द्रगति – त्रिविधा मन्द्रगति के लिए अंशपरा, न्यासपरा तथा अपन्यासपरा शब्द भरत ने प्रयुक्त किये हैं। इसका भी यह अर्थ हुआ कि जाति में जो अंश स्वर हो, उससे नीचे चार, पाँच या सात स्वर तक ही मन्द्र में जाना चाहिये।

5. न्यास – जिस स्वर पर (अंङ्ग) गीत अथवा वाद्य प्रबन्ध की समाप्ति हो, वह न्यास कहलाता है। जाति गायन में न्यास स्वर अपरिवर्तनशील होता है। भरत ने कहा है कि न्यास सर्वदा मन्द्र में होना चाहिए, परन्तु इस नियम का पालन शुद्ध जातियों में होना चाहिए। विकृता जातियों में ऐसा कोई नियम नहीं है। एक स्वर कई जातियों में न्यास स्वर हो सकता है और अवस्था भेद से एक जाति में कई न्यास हो सकता है और अवस्था भेद से एक जाति में कई न्यास स्वर भी हो सकते हैं। फलतः न्यास स्वरों की संख्या 21 बतायी गयी है।

6. अपन्यास – भरत के अनुसार जिस स्वर पर 'अंङ्ग' यानि गीत अथवा वाद्य के मध्य की समाप्ति होती है उसको अपन्यास का स्वर कहते हैं। इनकी संख्या कुल 56 है।

7–8. अल्पत्व – बहुत्व – किसी स्वर का प्रयोग कितनी मात्रा में होता है, यह दिखाने का उपाय ये दो लक्षण अल्पत्व एवं बहुत्व हैं। अल्पत्व लंघन और अनाभ्यास द्वारा दो प्रकार से होता है तथा बहुत्व उसके विपरीत अलंघन और अभ्यास द्वारा दो प्रकार का होता है।

9. षाडवत्व – जिन गीत अथवा जातियों में छः स्वरों का प्रयोग होता है वे जातियां षाडव कही गयी है।

10. औडुवित या औडव – जिन जातियों में पॉच स्वरों का प्रयोग होता है उसे जाति का औडव रूप कहा गया है। ऐसे ये औडव प्रकार दशविध है।

जाति के इन भरतोक्त दस लक्षणों के अतिरिक्त शारंगदेव ने तीन और लक्षण कहे हैं वे इस प्रकार हैं :–

1. सन्यास 2. विन्यास 3. अन्तर्मार्ग

जाति के भेद – जैसा कि हमने पूर्व में बताया कि भरत ने जाति के दो भेद बताये हैं :–

1. शुद्धा तथा
2. विकृता।

शुद्ध जातियॉ सात मानी गयी हैं। जिनके नाम सप्त स्वरों पर ही रखे गये हैं। शुद्धा जातियों के लक्षणों में से ही एक, दो या उससे अधिक लक्षणों में विकार उपजाने से विकृता जाति बनती है। इसका स्पष्टार्थ यही हुआ कि विकृता जातियां दो प्रकार से बनती हैं – प्रथम, पूर्णत्व सम्बन्धी नियम को विकृत करने से यानि औडव–षाडव प्रकार बनाने से और दूसरा जिस स्वर पर से जिस शुद्धा जाति का नामकरण हुआ हो, उसी स्वर को अंश, ग्रह, अपन्यास मानने के नियम का उल्लंघन करने से। केवल न्यास स्वर के नियम का कभी उल्लंघन नहीं हो सकता। इस प्रकार प्रत्येक शुद्धा जाति के कितने विकृत भेद बनेंगे इसका ब्योरा निम्न हैं :–

क0सं0	जाति का नाम	कुल विकृत भेद संख्या	विकृत स्वर	
			औडवषाडवादि भेद	ग्रह, अंश, अपन्यास के नियम भंग से बने भेद
1	षाड्जी	15	8	7
2	आर्षभी	23	16	7
3	गान्धारी	23	16	7

4	मध्यमा	23	16	7
5	पंचमी	23	16	7
6	धैवती	23	16	7
7	निषादवती	23	16	7
कुल संख्या		**153**	**104**	**49**

संसर्गजा विकृता जातियां – शुद्धा जातियों के विकृत भेदों के अतिरिक्त एकादश संसर्गजा विकृता जातियों पृथक रूप से कही गयी हैं। इन विकृता जातियों के सम्बन्ध में भरत, मतंग व शारंगदेव का मत इस प्रकार है :–

भरत के अनुसार – शुद्धा जातियों के परस्पर सहयोग से एकादश जातियां उत्पन्न होती है। शुद्धा जातियों के विकृत भेदों को भरत ने विकृता जातियां कहा है। इन विकृता जातियों के अतिरिक्त अन्य एकादश संसर्गजा जातियों के लिये भरत ने कहा है – संवाद द्वारा पुनः अशुद्ध की हुई जातियॉ एकादश होती हैं।

मतंग के अनुसार – संसर्गजा जातियॉ नित्य विकृता है अर्थात् शुद्धा जातियों के तो शुद्धा एवं विकृत दो भेद होते हैं। किन्तु एकादश जातियों की उत्पत्ति विकृता जातियों से होने के कारण उनका सदैव विकृत रूप ही रहता है।

शारंगदेव के मतानुसार – शुद्धा जातियों की विकृत अवस्था के संसर्ग से एकादश संसर्गजा जातियॉ बनती हैं।

संसर्गजा जातियों की तालिका इस प्रकार हैं –

	संसर्गजा विकृता जातियां	**ग्राम**	**किन शुद्धा जातियों के मिश्रण से बनी हैं।**
1.	षड्ज मध्यमा	षड्ज	षाडजी+ मध्यमा।
2	षडजोदीच्यवा	षड्ज	षाड्जी + गान्धारी+ धैवती
3.	षड्जकैशिकी	षड्ज	षाड्जी+ गान्धारी
4	गान्धारीरो दीच्यवा	मध्यम	षाड्जी+ गान्धारी+ धैवती+ मध्यमा
5.	मध्योदीच्यवा	मध्यम	गान्धारी + पञ्चमी+ धैवती + मध्यमा
6.	रक्तगान्धारी	मध्यम	गान्धारी+ पञ्चमी + नैषादी + मध्यमा
7	आन्ध्री	मध्यम	गान्धारी + आर्षभी
8	नन्दयन्ती	मध्यम	गान्धारी + पंचमी + आर्षभी
9	गान्धार पंचमी	मध्यम	गान्धारी + पंचमी
10	कार्मारवी	मध्यम	नैषादी + आर्षभी + पञ्चमी
11	कैशिकी	मध्यम	षाड्जी + गान्धारी + मध्यमा + पञ्चमी + नैषादी।

इस प्रकार जाति एक प्राचीन गायन शैली है। इसका प्रचार–प्रसार भरत काल में सर्वाधिक था। वस्तुतः राग गायन से पहले जातिगायन का प्रचार था। इनका उत्पत्ति स्थल सामगान माना गया है। जिस प्रकार ऋृक्, यजु और साम में परिवर्तन नहीं किया जा सकता उसी प्रकार जातियों में भी परिवर्तन असम्भव है। इसी विचार के कारण जातियों का रूप अक्षुण्ण रहा। जातियों का मुख्य विषय ईश्वर भक्ति ही होता था और इनकी ध्वनि बड़ी प्रभावशाली तथा मनमोहक होती थी।

1.4 राग गायन एवं राग के लक्षण

आप प्राचीन काल में प्रचलित जाति गायन के विषय में तो समझ गये होंगे। इस खण्ड में हम राग गायन तथा राग के लक्षणों की चर्चा करेंगे। भरत की परम्परा में जो स्थान जातिगायन को प्राप्त था। आधुनिक पद्धति में वही स्थान रागों को प्राप्त है।

संगीतशास्त्र में राग का दो अर्थों में प्रयोग हुआ है – एक सामान्य और दूसरा विशेष। सामान्य अर्थ में राग रंजकता का वाचक है और विशेष अर्थ में वह एक ऐसे नादमय व्यक्तित्व का घोतक है, जो स्वर देह और भाव देह से समन्वित है। राग का अर्थ उसी स्वर समूह से लिया जाता है जिसमें रंग देने की शक्ति हो और उसका एक विशेष व्यक्तित्व हो। इस विशेष व्यक्त्वि के दो पहलू हैं – एक स्वरमय और दूसरा भावमय। ये दोनों अविच्छेद्य है और परस्परावलम्बी हैं। फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिये पहले स्वर देह के अंगों को समझना आवश्यक हो जाता है।

राग के स्वर देह के विश्लेषण के प्रसंग में भरत के द्वारा बताए गये जाति के दस लक्षण परम उपयोगी हैं क्योंकि राग 'जाति' का ही विकसित रूप है और जाति के ही मूल तत्त्वों पर आज तक टिका हुआ है। जाति और राग में कोई विरोध नही है, इसलिये भरतोक्त जाति लक्षणों को ही राग के लक्षणों में स्थान मिला। जाति लक्षणों का हमने विस्तार से वर्णन किया है। यहाँ उसी के ?आधार पर राग के लक्षणों की व्याख्या प्रस्तुत है।

1. **ग्रह** – आज हम राग लक्षणों में ग्रह को आरंभिक स्वर ही समझते हैं और यही अर्थ शास्त्रीय दृष्टि से उचित भी है। यों तो गान या वादन–क्रिया आरंभ करते समय षड्ज को ही ग्रहण किया जाता है, क्योंकि अन्य स्वरों की तारता दृष्टि से षड्ज के आधार पर ही निश्चित की जाती है। इस दृष्टि से षड्ज ही सभी रागों का ग्रह स्वर होना चाहिये, किन्तु निम्नांकित दो दृष्टिकोणों से राग का 'ग्रह' स्वर षड्ज से भिन्न भी हो सकता है :–

क. राग के विस्तार में यानि आलाप तान में आरंभ स्थान – कई राग ऐसे होते हैं, जिनमें आलाप –तान षड्ज से नहीं शुरू किये जाते। उदाहरण के लिए कल्याण और बिहाग को ले सकते हैं। इन दोनों में आलाप व तानों की क्रिया षड्ज से आरम्भ न हो करके निषाद स्वर से होती है। कल्याण में 'सा–रे–ग' कभी नहीं किया जाता और बिहाग में भी 'सा–ग–म–प' की अपेक्षा 'नि–सा–ग–म–प' ही अधिक किया जाता है।

ख. राग के मुख्य अंग का आरंभिक स्वर – कभी–कभी राग का मुख्य अंग या पकड़ ऐसे स्वर से आरंभ होता है, जो आलाप तान का आरंभिक स्वर नहीं होता। जैसे कि राग जयजयवन्ती का मुख्य अंग 'ध़ नि़ रे ' है और यह धैवत से प्रारम्भ होता है, किन्तु राग के आलाप–तान भी धैवत से शुरू होते हो, ऐसी बात नहीं। इसलिए मुख्य अंग के आधार पर धैवत को इसका 'ग्रह' स्वर मान सकते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आज भी ग्रह स्वर का प्रयोग राग पद्धति में होता है।

2. अंश – भरत के द्वारा यह दूसरा लक्षण बताया गया है जो कि जाति का प्राण स्वर है। यह राग लक्षण भी है। अंश को राग का प्राण स्वर या जीव स्वर भी कहते हैं और उसकी यह संज्ञा अंश के प्रथम लक्षण 'यस्मिन् वसति रागस्तु' के अनुसार सार्थक ही है। भरत के कई जातियों में एक से अधिक अंश स्वर कहे हैं और वैसा प्रयोग आज भी कल्याण जैसे रागों में अवश्य संभव होता है। कल्याण में किसी भी स्वर को केन्द्रबिन्दु बना कर आलापचारी की जा सकती है। हॉ, ऐसा प्रयोग सब रागों में संभव नहीं।

राग के मुख्य अंग या पकड़ को अंश के पांचवे लक्षण का ही विकसित रूप कह सकते हैं। जाति के अंश स्वर का पॉचवा लक्षण यह कहता है कि अंश स्वर अन्य स्वरों अथवा स्वर समूहों द्वारा परिवेष्टित रहता है। राग का मुख्य अंग यह निर्देशित करता है कि अंश स्वर का यह परिवेष्टन मुख्य रूप से किस प्रकार किया जाये। उदाहरण के लिये राग जयजयवन्ती का ध़–नि़–रे – अंश '

स्वर ऋृषभ का परिवेष्टन दिखाता है। हमीर राग का 'ग – म– ध' अंश स्वर धैवत की विशेष क्रिया; तोड़ी का सा – रे – ग, रे – ग– रे– सा अंश स्वर गंधार की क्रिया विशेष या परिवेष्टन का निर्देशक है।

3–4. न्यास–अपन्यास – ये संगीत में विराम चिन्हों के घोतक हैं। संगीत में ठहराव का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुछ रागों का तो अस्तित्व ही ठहराव के नियम पर टिका हुआ है अर्थात् कहाँ और कितना ठहरना है ये नियम ही उसके प्राण हैं। उदाहरण के लिए 'देशकार' पंचम पर ठहराव के कारण भी राग भूपाली से भिन्न होता है।

5–6. तार–मन्द्र – स्थान भेद अभिव्यक्ति का सबल साधन है। एक ही स्वर स्थान भेद से अर्थात् मन्द्र, मध्य, तार स्थानों में प्रयुक्त होने से भिन्न–भिन्न प्रभाव उत्पन्न करता है। इसलिए राग के व्यक्तित्व में तार–मन्द्र मर्यादा का भी बहुत बड़ा स्थान होता है। राग पूरिया और राग सोहनी की भिन्नता बहुत अंश तक उनकी तार–मन्द्र मर्यादा पर ही निर्भर है। लयभेद का स्थान भेद के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि मन्द्र स्थान का विलम्बितलय के साथ, मध्यस्थान का मध्यलय के साथ तथा तार स्थान का द्रुतलय के साथ स्वाभाविक लगाव या झुकाव रहता है। इस प्रकार स्थान भेद के कारण जो विशेष अभिव्यक्ति होती है। उसमें लयभेद का भी स्वाभाविक योग होता है।

7–8. अल्पत्व–बहुत्व – किसी स्वर का राग में कितना या किस मात्रा में प्रयोग होता है, यह दिखाने का उपाय ये दो लक्षण है। अल्पत्व लंघन और अनाभ्यास द्वारा तथा बहुत्व अलंघन तथा अभ्यास द्वारा होता है।

9–10. षाडव– औडव – इन लक्षणों का राग में प्रयुक्त होने वाले स्वरों की संख्या के साथ सम्बन्ध है। 5 स्वर प्रयुक्त होने से औडव, छः स्वरों का प्रयोग होने से षाडव कहलाते हैं यह आप भलि भांति जानते हैं।

इन दस लक्षणों के अतिरिक्त स्पर्श स्वरों या कणों का भी राग में बहुत महत्व होता है। भारतीय संगीत की यह बड़ी विशेषता है कि उसमें खड़े स्वरों का प्रयोग प्रायः नहीं होता। कुछ रागों का तो अस्तित्व ही इन स्पर्श स्वरों पर टिका हुआ है। उदाहरण के लिए राग शंकरा का ' गप' ग ऽ$^{रे}$ **रे सा** और जैतकल्याण ' प ध ग$^{सां}$, रे^{प} ऽ सा' ये टुकड़े अपेक्षित स्पर्श स्वरों के बिना उन रागों का दर्शन कदापि नहीं करा सकते। उसी 'पम"गमग' का टुकड़ा स्पर्श स्वरों के भेद से भिन्न–भिन्न रागों का दर्शन कराता है। यथा–

प प
प ऽ म" ग म ग – बिहाग
म"
प ऽ ऽ ग म ग – परज
रे
प ऽ म" ग म ग – पूर्वी

स्पर्श स्वरों के कारण रागों की जिस सूक्ष्म भिन्नता का हमने अल्पदर्शन किया, उससे स्वर प्रयोग की इस विशेषता का महत्त्व स्पष्ट हुआ होगा। स्वर प्रयोग की यह सूक्ष्मतायें राग के व्यक्तित्व के क्रमिक विकास की घोतक हैं। इन्हें प्राचीन राग लक्षण में उल्लिखित स्थान न होने पर भी इनके महत्त्व से मुंह मोड़ना हमारी राग पद्धति के लिए घातक होगा। आजकल ऐसी भ्रान्त धारणा का

प्रचार किया गया है कि स्पर्श स्वर तो केवल राग की सजावट के लिये ही उपयोगी है और प्रारम्भिक विद्यार्थियों के लिये उनकी कोई आवश्यकता नहीं। वास्तव में स्पर्श स्वर केवल सजावट के लिये नहीं अपितु रागरूप के यथोचित निर्माण के लिये भी परम आवश्यक है।

ऊपर हमने जिन राग लक्षणों की चर्चा की है वे राग–व्यक्ति के अंग मात्र हैं। इसलिए वे एकशः या अकेले–अकेले पूर्ण व्यक्ति का दर्शन नहीं करा सकते। राग के पूरे व्यक्तित्व का दर्शन तो इन अंगों के समन्वय द्वारा ही संभव है। ये तो राग का रेखाचित्र या ढांचा मात्रा निर्दिष्ट कर सकते हैं। राग के पूर्ण स्वर देह को यथोचित ढंग से प्रस्तुत करना तो कलाकार के कौशल एवं साधना पर निर्भर करता है। यह भी सत्य है कि राग के लक्षणों के जो नियम निर्धारित हैं उनके अल्प मात्र भी भंग होने से राग रूप विकृत हो जाता है ठीक उसी प्रकार जैसे कि मुखाकृति अंकित करते समय नाक, आँख, भौंह आदि की रेखाओं में जरा भी अंतर आने से मुख के रूप में साम्य परिवर्तन आ जाता है।

हमारी राग पद्धति विकास की जिस उच्च भूमिका पर आरूढ़ है, उसका एक उदाहरण यह भी है कि राग रूप का पूरा विस्तार किये बिना ही एकाध टुकड़े के प्रयोग से ही राग पहचान में आ जाता है। आजकल वादी, संवादी, अनुवादी और विवादी, इन शब्दों का राग लक्षण के निरूपण में प्रयोग किया जाता है, और ऐसा भी कहा जाता है कि ग्रह, अंश आदि प्राचीन लक्षणों का आज कोई उपयोग नहीं रह गया है। वास्तव में वादी, संवादी इत्यादि शब्दों का रागलक्षण में प्रयोग इन शब्दों के परंपरा प्राप्त अर्थ के अनुकूल नहीं है, क्योंकि भरत ने तो स्वरों का पारस्परिक सम्बन्ध या स्वरों के निश्चित अंतराल निर्दिष्ट करने में इन शब्दों का प्रयोग किया है। संवाद, विवाद और अनुवाद ये तीन शब्द स्वरों के निश्चित अंतराल निर्दिष्ट करने में इन शब्दों का प्रयोग किया है। संवाद, विवाद और अनुवाद ये तीनों शब्द स्वरों के निश्चित अंतरालों के घोतक है। संवाद से नव–त्रयोदश श्रुत्यंतर का संवादी अंतराल, विवाद से दो श्रुत्यंतर का विवादी अंतराल और 'अनुवादी' से अन्य निरपेक्ष अंतराल अभिप्रेत रहे हैं। अतंराल के लिये दो सिरे आवश्यक हैं। इसलिए किसी भी स्वर जोड़ी का पहला सिरा वादी कहा गया और दूसरा सिरा बीच के अन्तराल के अनुसार संवादी, विवादी या अनुवादी माना गया। इस प्रकार किसी भी जोड़ी का आधार भूत स्वर – वादी' होता है और उसके लिए भरत ने अंश स्वर का प्रयोग किया है। यह अंश राग लक्षण वाले अंश से स्पष्टतया पृथक है। 'अंश' शब्द के इस दो अर्थ वाले प्रयोग के कारण ही संभवतः वादी को राग – लक्षण में अंश का पर्यायवाची मान लिया गया होगा और वादी के साथ–साथ संवादी, अनुवादी और विवादी भी राग लक्षण में स्थान पा गये होंगे। जो कुछ भी हो यह सत्य है कि मध्ययुग में ग्रह, अंश, न्यास, के स्थान पर वादी–संवादी को राग लक्षण में स्थान दिया गया और यही शब्दावली आधुनिक युग में भी ग्रहण की गयी।

इस प्रकार आपने उन आवश्यक तत्त्वों को देखा, जिनसे राग–व्यक्ति की स्वर देह और भाव देह बनती है। प्रत्येक राग सुखप्रद होने के अर्थ में तो रंजक होता है, किन्तु साथ ही साथ उसका एक अपना वैशिष्टय होता है और इसी वैशिष्टय के कारण उसमें रंजन करने की शक्ति होती है और उसकी अपनी पहचान होती है।

1.5 सारणा चतुष्टयी

यह तो आप जानते ही हैं कि संगीत का आधार नाद है। संगीतोपयोगी नाद में रंजकता होना आवश्यक है। ऐसे रंजक नाद जो कानों से सुने जायें, समझे जायें और जिनकी ऊँचाई–निचाई के पृथकत्व का स्पष्ट अनुभव किया जा सके, ऐसे नादों को ही श्रुति कहा है। प्राचीन आचार्यों ने नाद के एक स्थान में 22 श्रवणगोचर नाद माने और इन्हें 'श्रुति' नाम से घोषित किया, जिसे परवर्ती मध्यकालीन और अर्वाचीन एवं आधुनिक सभी विद्वानों ने स्वीकार किया। इसी प्रकार

प्राचीन आचार्यों ने इन बाईस श्रुतियों को 4–3–2–4–4–3–2 के अनुपात द्वारा सा, रे ग, म, प ध, और नी सात स्वरों में विभाजित किया, इसे भी मध्य और अर्वाचीन विद्वानों ने मान्यता प्रदान की। परन्तु श्रुति का प्रमाण एवं परिभाषा क्या है अर्थात् श्रुति क्या है और कितनी बड़ी है, इस सम्बन्ध में मतभेद उत्पन्न हो गया और साथ ही प्रत्येक स्वर को उसकी अन्तिम श्रुति पर स्थापित करने के सिद्धान्त पर प्राचीन एवं मध्यकालीन विद्वान सहमत थे, परन्तु आधुनिक विद्वान स्व0 पंडित विष्णुनारायण भातखण्डे ने इस नियम को नहीं माना। वह प्रत्येक स्वर को उसकी प्रथम श्रुति पर स्थापित करना उचित समझते थे। लेकिन श्रुतियों की संख्या एवं अन्तराल में सभी एक मत हैं। 22 श्रुतियों की सिद्धि के लिए प्राचीन आचार्यों ने जिस प्रक्रिया का प्रयोग किया उसे 'सारणा चतुष्टयी' के नाम से जाना जाता है।

भरत के अनुसार ये सब श्रुतियॉ संवादसिद्ध हैं। संवाद के आधार पर ही प्राचीनों ने इन श्रुतियों को सिद्ध किया है। इन सभी श्रुतियों में नव और त्रयोश यानि नौ तथा तेरह के अन्तर से परस्पर संवाद प्रसिद्ध है। भरत कोहल आदि आचार्यों के पूर्व जब से श्रुतियां सिद्ध की गयी होगी, तब उस काल में नाद की कंपन संख्या को नापने की प्रक्रिया का प्रचार हो या न हो, उनका गणित मूल्य देखकर उन्हें सिद्ध करने के यत्न की शक्यता या आवश्यकता प्रतीत हुई हो या न हुई हो, किन्तु यह नितान्त सत्य है कि इन सब श्रुतियों का संवाद–सम्बन्ध कानों से सुनकर ही, नाप कर ही निर्णीत किया गया होगा। इन बाईस श्रुतियों को सिद्ध करने के लिए जिस संवाद–प्रक्रिया को साधन बना कर उसका प्रयोग किया गया उसे सारणा चुतष्टयी या चतुः सारणा कहते हैं। इस सारणा के चार चरण हैं। आप इसे निम्न प्रकार से समझें :–

क. प्रथम चरण – भरत ने सारणा–चतुष्टयी रूपी अनुसंधान दो वीणाओं द्वारा किया। एक वीणा को ध्रुव वीणा (अचल वीणा) और दूसरी को चल वीणा का नाम दिया। दोनों वीणायें समान आकार, समान परिमाण और समान नाद वाली थी। दोनों वीणायें षड्जग्राम के स्वर आर्थात् षड्ज चौथी, ऋृषभ सातवीं, गंधार नवीं, मध्यम तेरहवीं, पंचम सतरहवीं, धैवत बीसवीं और निषाद बाइसवीं श्रुति पर स्थापित थे। दोनों वीणायें एक ही तारता पर मिली थी। सबसे पहले भरत ने चल वीणा के पंचम स्वर को सतरहवीं श्रुति से कुछ थोड़ा सा नीचे उतार कर उसे मध्यमग्राम के पंचम स्वर में मिला दिया जो कि सोलहवीं श्रुति पर स्थिर रहता है। जब चल वीणा और मध्यम ग्रामिक वीणाओं के स्वर परस्पर मिल गये तो भरत ने ध्रुव वीणा और चल–वीणा के पंचम स्वरों के अन्तर को 'प्रमाण श्रुति' घोषित किया और इसके पश्चात् शेष सभी स्वर एक–एक श्रुति नीचे उतार दिये गये। यह भरत की पहली सारणा थी। इस क्रिया से षड्ज स्वर तीसरी अर्थात् मन्द्रा श्रुति पर, ऋृषभ स्वर छटी अर्थात् रंजनी श्रुति पर, गंधार स्वर आठवीं अर्थात् रौद्री श्रति पर, मध्यम स्वर बारहवीं अर्थात् प्रीति श्रुति पर, पंचम स्वर सोलहवीं अर्थात् संदीपनी श्रुति (मध्यमग्रामिक पंचम) पर, धैवत स्वर उन्नसवीं अर्थात् रोहिणी श्रुति पर और निषाद स्वर इक्कीसवीं अर्थात् उग्रा श्रुति पर पहुँच गयी। इस सारणा में भरत को एक श्रुति अर्थात् 'प्रमाण श्रुति' का अनुभव हुआ।

ख. द्वितीय सारणा – द्वितीय सारणा के लिये भरत ने चल वीणा के सभी स्वरों को एक बार फिर एक–एक श्रुति नीचे उतार दिया। इस प्रकार षड्ज स्वर दूसरी अर्थात् कुमुद्वती श्रुति पर, ऋृषभ स्वर पाँचवी अर्थात् दयावती श्रुति पर, गांधार स्वर सातवी अर्थात् रक्तिका (रे का स्थान) श्रुति पर, मध्यम स्वर ग्यारहवीं अर्थात् प्रसारिणी श्रुति पर, पंचम स्वर पन्द्रहवीं अर्थात् रक्ता श्रुति पर, धैवत स्वर अठारहवीं अर्थात् मदन्ती श्रुति पर और निषाद स्वर बीसवीं अर्थात् रम्या श्रुति पर (ध का स्थान) पर पहुँच गये। चूंकि प्रत्येक स्वर दो–दो श्रुति नीचे उतर चुका था अतः दो श्रुतियों वाले गंधार और निषाद अपने निकट पड़ोसी ऋृषभ और धैवत स्वरों से मिल गये। इस सारणा द्वारा भरत को 'ग'

स्वर की दो तथा नि' स्वर की दो अर्थात् चार श्रुतियों का अनुभव हुआ और साथ ही यह भी अनुभव हुआ कि दोनों स्वरों में परस्पर 13 श्रुतियों का अन्तर अर्थात् षड्ज–पंचम भाव विद्यमान है।

ग. तृतीय सारणा – तृतीय सारणा में भरत ने पुनः चलवीणा के सभी स्वरों को एक बार फिर एक–एक श्रुति नीचे उतार दिया। इसके परिणामस्वरूप 'स' पहली अर्थात् तीव्रा श्रुति पर, 'रे' चौथी अर्थात् छन्दोवती (स का स्थान), ग छटी अर्थात् रंजनी श्रुति पर, म दसवीं अर्थात् वज्रिका श्रुति पर, 'प' चौदहवीं अर्थात् क्षिति श्रुति पर, 'ध' सतरहवीं अर्थात् अलापिनी श्रुति पर और 'नि' उन्नीसवीं अर्थात् रोहिणी श्रुति पर पहुँच गये, जिसके फलस्वरूप तीन–तीन श्रुतियों वाले रे एवं ध स्वर स और 'प' स्वरों से मिल गये और रे–ध का षड्ज–पंचम भाव भी स्पष्ट रहा। इस सारणा से 3+3 =6 श्रुतियों का अनुभव हुआ।

घ. चतुर्थ सारणा – चतुर्थ सारण के अन्तर्गत सभी स्वरों को एक–एक श्रुति पुनः उतारने से 'सा' बाईसवीं (मन्द्र सप्तक) अर्थात् क्षोभिणी श्रुति (मन्द्र नी स्वर) पर, रे तीसरी अर्थात् मन्दा श्रुति पर , 'ग' पाँचवी अर्थात् दयावती श्रुति पर, 'म' नवीं अर्थात् क्रोधा श्रुति पर (ग स्वर), 'प' तेरहवीं अर्थात् मार्जनी श्रुति पर (मध्य स्वर), 'ध' सोलहवीं अर्थात् सन्दीपनी श्रुति पर और 'नि' अठारहवीं अर्थात् मदन्ती श्रुति पर पहुँच गये। इस चतुर्थ एवं अन्तिम सारणा के फलस्वरूप चार–चार श्रुतियों वाले स–म–प स्वर नि (मन्द्र) – ग – म स्वरों से मिले। इस सारणा के फलस्वरूप भरत को 4+4+4=12 श्रुतियों का अनुभव हुआ और षड्ज–पंचम तथा षड्ज–मध्यम भाव स्पष्ट रहे।

इस प्रकार इन चार सारणाओं में भरत को प्रथम सारणा द्वारा प्रमाण श्रुति और उसका परिमाण, द्वितीय सारणा में 2+2= 4 श्रुतियों, तृतीय सारणा में 3+3 =6 श्रुतियों तथा चौथी यानि चतुर्थ सारणा में 4+4+4=12 श्रुतियों का अनुभव हुआ। इसके अतिरिक्त यह भी सिद्ध हुआ कि भारतीय सप्तक के स्वर संवादित्व के आधार पर नियत किये जाते थे।

इस सारणा चतुष्टयी के सम्बन्ध में भरत का समर्थन करने वालों में संगीत रत्नाकर के रचयिता पंडित शारंगदेव का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने भरत मत को स्पष्ट करते हुए दो वीणाएँ ली। दोनों वीणाओं के समान नाद होने पर उन पर बाईस–बाईस तार (एक दूसरे से क्रमिक छोटे) चढ़ा दिये। दोनों की प्रथम तारों को मन्द्रतम ध्वनि से मिला दिया। इसके पश्चात् प्रत्येक तार को एक दूसरे से इतना ऊँचा मिलाया कि दो तारों (नादों) के बीच में और कोई अन्तर न हो अर्थात् दोनों पड़ोसी तारों के बीच नाद निरंतर हों। इसी प्रकार बाईस तारें एक दूसरे से ऊँची मिला दी गई। जब दोनो वीणाएँ तैयार हो गई तो एक वीणा ध्रुव और दूसरी चल वीणा पर प्रथम सारणा अर्थात् अनुसंधान आरम्भ कर दिया। प्रथम सारणा से पूर्व सातों स्वरों की स्थापना क्रमशः चौथी, सातवीं, नवीं, तेरहवीं, सतरहवीं, बीसवीं और बाईसवीं तारों पर कर दी। प्रथम सारणा शुरू करते हुए पंडित जी ने चलवीणा पर स्थित सात स्वरों को एक–एक तार नाद नीचे उतार दिया अर्थात् चौथी तार के बाद की तीसरी तार का नाद और सातवीं तार के नाद को छठी तार के नाद से मिला दिया। इसी प्रकार सभी स्वर अपने से पूर्व तारों में मिला दिये। इस प्रक्रिया से ध्वनित सातों स्वर ध्रुव वीणा के स्वरों से नीची ध्वनि देने लगे। दोनों वीणाओं के स्वरांतरों को पंडित जी ने एक श्रुति के समान कहा। दूसरी सारणा में वह प्रक्रिया दोहराने पर सभी स्वर दो–दो श्रुति उतर कर ग–रे और नी–ध स्वरों के मिल जाने के कारण बने। इसी प्रकार तीसरी सारणा में रे–सा और ध–प मिल गये। चौथी सारणा में प–ग और म–ग तो मिल गये परन्तु सा–नि (मन्द्र) न मिल सके क्योंकि प्रथम तार तो पहले से ही मन्द्रतम ध्वनि से मिली हुई थी और चौथी तार पर 'सा' स्वर स्थापित हो चुका था। तीन सारणाओं में 'स' स्वर प्रथम तार पर तो आ गया था परन्तु चौथी सारणा में वह

प्रथम तार से नीचे नहीं आ सका। हां, तार सप्तक का षड्ज मध्य नी में अवश्य मिल गया। संगीत रत्नाकर में वर्णित यह पद्धति कुछ अस्पष्ट सी है।

इस प्रकार भरत ने अपनी प्रमाण श्रुति का परिमाण तो दे दिया कि प्रमाण श्रुति षड़ज और मध्यमग्रामिक पंचम स्वरों के पारस्परिक अन्तर के समान है परन्तु शेष 21 श्रुतियों के सम्बन्ध में कुछ न कहा। यही 21 श्रुतियां भावी पीढियों में चर्चा का विषय रहीं और इस समस्या को हल करने का प्रयत्न अनेक विद्वानों ने किया। आचार्य कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति ने अपने 'ग्रन्थ' भरत का संगीत सिद्धान्त में 'प्रमाण श्रुति' का उदाहरण एक वीणा श्रुतिदर्पण द्वारा किया है।

अब आप समझ गये होंगें कि चतुः सारणा प्रक्रिया के समबन्ध में प्राचीन काल से लेकर आुधनिक विद्वानों तक सभी भरत से सहमत हैं। सभी विद्वानों ने भरत द्वारा किये गये अनुसंधान का समर्थन किया और अपने–अपने अनुभव द्वारा इसे स्पष्ट किया है। भरत की सारणा चतुष्टयी को निम्न तालिका में स्पष्ट किया है :–

श्रुति संख्या	**श्रुति का नाम**	**स्वर**	**सारणा**				**श्रुति संख्या**
			1	2	3	4	
22	**क्षोमिणी**	**नी (मन्द्र)**	**–**	**–**	**–**	**सा**	**22 क्षोमिणी**
1	तीव्रा		–	–	सा	–	1 तीव्रा
2	कुमुद्वती		–	सा	–	–	2 कुमुद्वती
3	मन्दा		सा	–	–	रे	3 मन्दा
4	छन्दोवती	षड्ज	–	–	रे	–	4 छन्दोवती
5	दयावती		–	रे	–	ग	5 दयावती
6	रंजनी		श्रे	–	ग	–	6 रंजनी
7	रक्तिका	ऋृषभ	–	ग	–	–	7 रक्तिका
8	रौद्री		ग	–	–	–	8 रौद्री
9	क्रोधा	गांधार	–	–	–	म	9 क्रोधा
10	वज्रिका		–	–	म	–	10 वज्रिका
11	प्रसारिणी		–	म	–	–	11प्रसारिणी
12	प्रीति		म	–	–	–	12 प्रीति
13	मार्जनी	मध्यम	–	–	–	प	13 मार्जनी
14	क्षिति		–	–	प	–	14 क्षिति
15	रक्ता		–	प	–	–	15 रक्ता
16	संदीपनी		प	–	–	ध	16 संदीपनी
17	आलापिनी	पंचम	–	–	ध	–	17 अलापिनी
18	मदन्ती		–	ध	–	नि	18 मदन्ती
19	रोहिणी		ध	–	नि	–	19 रोहिणी
20	रम्या	धैवत	–	नि	–	–	20 रम्या
21	उग्रा		नि	–	–	–	21 उग्रा
22	क्षोभिणी	निषाद	–	–	–	–	क्षोमिणी

अभ्यास प्रश्न

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. भरत ने जाति के ..... लक्षण बताये हैं।
2. भरत ने जातियों के ..... भेद बताये हैं।
3. शुद्धा जातियां ..... मानी गयी हैं।
4. षाड्जी, आर्षभी, धैवती तथा निषादी ये चार जातियां ..... ग्राम की हैं।
5. गांधारी, मध्यमा तथा पंचमी ये तीन शुद्धा जातियां ..... की है।
6. भरत के द्वारा बताए गए जाति के दस लक्षणों के अतिरिक्त शारंगदेव ने .....लक्षण और बताए हैं।
7. प्राचीन आचार्यों ने बाईस श्रुतियों को ..... के अनुपात द्वारा सा, रे ग, म, प ध, और नी सात स्वरों में विभाजित किया है।
8. भरत ने सारणा–चतुष्टयी के लिए ..... वीणाओं का प्रयोग किया।
9. भरत ने ध्रुव वीणा और चल–वीणा के पंचम स्वरों के अन्तर को ..... बताया था।
10. आचार्य बृहस्पति ने 'प्रमाण श्रुति' का उदाहरण ..... वीणा द्वारा दिया है।

ख. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. जाति की परिभाषा कीजिए।
2. जाति लक्षणों के विषय में आप क्या जानते हैं?
3. जाति के भेदों के विषय में लिखें।
4. राग गायन एवं राग लक्षणों की चर्चा कीजिए।

1.6 सारांश

अब तक आप समझ गये होंगे कि प्राचीन काल से ही भारत वर्ष में गायन, वादन, नृत्य का विकास हो चुका था। कालक्रमानुसार संगीत में विभिन्न गायन शैलियों का समावेश होता गया तथा स्वर पर सदैव शोध एवं चिन्तन भी किया जाता रहा है। धर्म प्रधान देश होने के कारण गायन शैलियों का आधार भक्ति भावप्रधान ही रहा है। सामगान से यह परम्परा चली। पुनः जाति गायन, प्रबन्ध गायन, ध्रुपद गायन तथा फिर राग गायन के अंतर्गत ख्याल गायन आदि गायन शैलियों में देव आराधना की प्रवृत्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। भरत ने जाति गायन की विस्तृत रूप से व्याख्या करके जातियों के स्वरूप 7 शुद्ध तथा 11 संसर्गजा विकृता जातियों का लक्षणों सहित वर्णन किया है। जाति के दस लक्षणों की भी विस्तार से चर्चा की है।

परवर्ती काल में जाति के दस लक्षण ही किंचित परिवर्तनों के साथ राग–लक्षण कहलाये और मध्ययुग में रागों का समुचित विकास हो चुका था और अन्य लक्षणों का समावेश राग लक्षणों में हो चुका था। जाति लक्षण किसी न किसी रूप में आज भी राग लक्षणों में व्यवहार में हैं। राग के समान स्वरों के ऊपर भी प्राचीन आचार्यों में गंभीर चिन्तन किया। संगीत में प्रयुक्त होने वाली ध्वनि को नाद तथा नाद की लघुतम श्रवण की जाने वाली ध्वनि को श्रुति की संज्ञा प्रदान की। श्रुतियों की संख्या पर भी विचार किया गया। विभिन्न आचार्यों ने श्रुतियों की संख्या भी अलग–अलग मानी। किसी ने 22 किसी ने 20 तथा किसी 66 श्रुतियों की कल्पना की। आचार्य भरत ने एक सप्तक 22 श्रुतियॉ मानी जो कि आज भी मान्य हैं। इन 22 श्रुतियों की सिद्धि के लिए दो वीणाओं पर प्रयोग किया। इस प्रयोग को सारणा चतुष्टयी के नाम से जाना जाता है। संवादी के आधार पर इस सारणा चतुष्टयी प्रयोग में प्रथम सारणा में प्रमाण श्रुति, दूसरी सारणा में 4 श्रुति, तृतीय सारणा में 6

श्रुति तथा चतुर्थ सारणा में 12 श्रुतियों को सिद्ध किया। भरत के पश्चात् आचार्य शारंगदेव ने भी सारणा चतुष्टयी का प्रयोग किया लेकिन उनका ढंग कुछ अलग था। उन्होंने दो समान आकार वाली वीणाओं में 22–22 तान बांध कर इस प्रयोग को किया।

1.7 शब्दावली

1.	जाति गायन	–	गायन का एक प्रकार
2.	शुद्धा जाति	–	शुद्ध स्वरों पर आधारित जाति जैसे षाडजी, आर्षभी, गांधारी, मध्यमा, पंचमी, धैवती एवं नैषादी।
3.	संसर्गजा जाति	–	दो या दो से अधिक जातियों के मेल से बनती हैं।
4.	मन्द्र–तार	–	जाति का लक्षण
5.	अल्पत्व	–	जिस स्वर का कम प्रयोग किया जाए। यह दो प्रकार का होता है लंघन तथा अनाभ्यास।
6.	बहुत्व	–	जिस स्वर का अधिक प्रयोग किया जाये। यह भी दो प्रकार का होता है – अलंघन तथा अभ्यास।
7.	सारणा	–	श्रुतिसिद्धि के लिए भरत के द्वारा किया गया प्रयोग।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. दस(ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, तार, मन्द्र, अल्पत्व, बहुत्व, षाडवित एवं औडवित)
2. दो(शुद्धा तथा विकृता)
3. सात(षाड्जी, आर्षभी, गांधारी, मध्यमा, पंचमी, धैवती तथा निषादी)
4. षडजग्राम
5. मध्यम ग्राम
6. तीन (सन्यास, विन्यास व अन्तमार्ग)
7. 4–3–2–4–4–3–2
8. ध्रुव वीणा, चल वीणा
9. 'प्रमाण श्रुति'
10. श्रुतिदर्पण

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ठाकुर, पंडित ओंकारनाथ, प्रवण भारती, वाराणसी।
2. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, निबन्ध संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस।
3. बृहस्पति, आचार्य कैलाश चन्द्रदेव, भरत का संगीत सिद्धान्त, दिल्ली।

1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. ठाकुर, पंडित ओंकारनाथ, संगीतांजली – भाग– 1 से 6 तक।
2. पाठक, सुनन्दा, हिन्दुस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति एवं विकास।
3. बृहस्पति, आचार्य कैलाश चन्द्रदेव, नाट्यशास्त्र का अट्टाइसवां अध्याय।

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. जातिगायन पर निबन्ध लिखें।
2. जाति के दशविध लक्षणों की विस्तार से चर्चा कीजिए।
3. शुद्धा तथा विकृत जातियों के निर्माण के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।
4. राग को परिभाषित करते हुए राग के लक्षणों की चर्चा कीजिए।
5. सारणा चतुष्टयी पर विस्तारपूर्वक टिप्पणी लिखें।

इकाई 2 – प्रबन्ध का विस्तृत अध्ययन एवं प्रबन्ध की ध्रुपद व ख्याल से तुलना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 प्रबन्ध का विस्तृत अध्ययन
2.3.1 प्रबन्ध की व्युत्पत्ति एवं अर्थ
2.3.2 प्रबन्ध के अंग
2.3.3 प्रबन्ध की धातु
2.3.4 प्रबन्धों के भेद
2.4 प्रबन्ध की ध्रुपद से तुलना
2.5 प्रबन्ध की ख्याल से तुलना
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रदर्शन कला–संगीत में स्नातकोत्तर, तृतीय सेमेस्टर (एम0पी0ए0एम0आई0–602) पाठ्यक्रम की दूसरी इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में जातिगायन, राग गायन एवं राग के लक्षणों के बारे में जान चुके है। आप सारणा चतुष्टयी को भी विस्तार से समझ चुके हैं।

इस इकाई में प्रबन्ध का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। संगीत के नियमों से बंधी विशिष्ट रचना को रूढ़ार्थ में प्रबन्ध का नाम मध्यकाल में प्राप्त हुआ। प्रबन्ध एक गायन विधा कहलाई जिसे वस्तु तथा रूपक की भी संज्ञा प्राप्त हुई। परवर्ती काल में विकसित ख्याल, ध्रपद आदि पर इसका प्रभाव था। इस इकाई में प्रबन्ध की ध्रुपद व ख्याल से तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप प्रबन्ध के विषय में जान सकेंगे। आप प्रबन्ध की व्युत्पत्ति, अर्थ, अंग, धातु, भेद आदि को भी जान सकेंगे। आप प्रबन्ध की ध्रुपद व ख्याल से तुलना भी कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

1. प्रबन्ध के विषय में जान सकेंगे।
2. प्रबन्ध की व्युत्पत्ति, अर्थ, अंग, धातु, भेद आदि को भी जान सकेंगे।
3. प्रबन्ध की ध्रुपद से तुलना कर सकेंगे।
4. प्रबन्ध की ख्याल से तुलना कर सकेंगे।

2.3 प्रबन्ध का विस्तृत अध्ययन

2.3.1 प्रबन्ध की व्युत्पत्ति एवं अर्थ – प्रबन्ध शब्द की व्युत्पत्ति प्र+बन्ध+तृच प्रत्यय् लगाने से हुई है। प्र+बन्ध+ धञ् से प्रबन्ध शब्द बनता है। इसका अर्थ है प्रकृष्ट रूप से बद्ध। संस्कृत में प्रबन्ध का अर्थ संविधा, उपाय, आयोजन, अधिष्ठान, महाकाव्य आदि के अर्थ में लिया गया है। संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत 'प्रबन्ध' साहित्यिक कृति या रचना को भी कहा गया है। हिन्दी भाषा में प्रबन्ध का अर्थ प्रकृष्ट बन्धन, कई बातों या वस्तुओं की एक ग्रन्थ में योजना, तथा एक दूसरे से सम्बद्ध पद्यों में पूरा होने वाला काव्य बताया गया है। एक प्रकार का छोटा लेख जो विद्यार्थी लिखते हैं, प्रबन्ध कहलाता है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद ने प्रबन्ध काव्य के तीन भेद–महाकाव्य, एकार्थकाव्य और खण्डकाव्य किये हैं। इस प्रकार वास्तव में यदि देखा जाए तो समस्त साहित्य में एक प्रबन्धात्मक समायोजन दृष्टिगोचर होता है।

संगीत में प्रबन्ध का अर्थ दो रूपों में ग्रहण किया गया है। 1– सामान्य तथा 2– विशिष्ट । सामान्य अर्थ में प्रबन्ध से अभिप्राय एक सम्पूर्ण संरचना हेतु विभिन्न सांगीतिक तत्वों के गठन से है। विशिष्ट अर्थ में प्रकृष्टोबन्धः अर्थात् प्रकष्टों यस्य बन्धः स्यात् स प्रबन्धों निगद्यते' तात्पर्य यह है कि प्रकृष्ट रूप से बद्ध किसी संरचना को प्रबन्ध कहा जाता है। यहाँ प्रबन्ध से अभिप्राय बंदिश निर्माण कला के उस भाग से है, जो स्पष्टता, क्रम, अंग एवं संतुलन से नियमित हो। वैदिक सामगान, भरत–कालीन सप्तगीत प्रकार, ध्रुवा गीत, शार्ङ्देव के ग्राम राग, राग, उपराग आदि लक्षणों से युक्त गीत प्रकार, आधुनिक संगीत के ख्याल, ध्रुपद, धमार, चतुरंग, तराना तथा दक्षिण भारत के कीर्तनम्, कृति, पदम् आदि समस्त शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत आने वाले प्रकार निबद्ध संगीत के उदाहरण हैं'। प्रबन्ध शब्द का सामान्य सांगीतिक अर्थ यद्यपि समस्त सांगीतिक रचनाओं से है, तथापि संगीतशास्त्रों में प्रबन्ध के विशिष्ट अर्थ को स्वीकारते हुए, उसे निबद्ध संगीत प्रकार बता कर रूढ़ अर्थ में उसका विवरण दिया गया है। प्रबन्ध का निरूपण मतंग कृत बृहद्धेशी, मानसोल्लास, संगीत रत्नाकर, संगीतशिरोमणि, संगीतराज, संगीत दामोदर आदि ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इन सबमें प्राप्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विशिष्ट धातुओं और अंगों से युक्त संरचना को प्रबन्ध कहा जाता है। प्रबन्ध की परिकल्पना एक पुरूष रूप में की गयी है, जिसकी शारीरिक संरचना का विवरण धातुओं और अंगों के सन्दर्भ में किया गया है। अंग वे विभिन्नतत्व हैं, जिनसे प्रबन्ध का निर्माण होता है। प्रबन्ध के अंग वास्तविक रूप में उसकी प्रकृति और विशिष्ट लक्षणों का निर्धारण करते थे, तथा विभिन्न अर्थों के बोधक के अंग प्रबन्ध को विशिष्ट रूप से महत्त्वपूर्ण बताते थे। प्रबन्ध के छह अंग तथा चार धातु कहे गये हैं।

2.3.2 प्रबन्ध के अंग – प्रबन्ध के छह अंग–स्वर, विरूद, पद, तेन, पाट तथा ताल कहे गये हैं। सभी आचार्यों ने अधिकांश रूप में शार्ङ्गदेव का ही अनुसरण किया है। प्रबन्ध के छह अंग और उनकी विशिष्टता इस प्रकार है :–

1. **स्वर** – जो नाद स्वयं शोभित होता है, उसे स्वर कहा जाता है। स्वरों की ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति, संयुक्त स, रे, ग, आदि वाचक स्वर समूहों को स्वर कहा जाता है। षड्ज, ऋृषभ, गन्धार आदि को संक्षिप्त रूप से सा, रे, ग आदि देकर प्रयोग किया जाता है। प्रबन्ध की स्वर योजना ही उसे गेय रूप प्रदान करती है। स्वर प्रबन्ध का महत्त्वपूर्ण अंग है।
2. **विरूद** – विरूद अथवा विरूद अनुसार प्रशंसासूचक विशेष पद हैं। साहित्यदर्पणकार के अनुसार गद्य पद्यमयी राजा की स्तुति को 'विरूद' कहा जाता है। विरूद शब्द वीरता का परिचायक है। शत्रुओं को उद्रेक देने वाला शौर्य का आख्यान विरूद कहलाता है। अतः जिन पदों में विशेषणों के द्वारा किसी व्यक्ति या राजा का गान किया जाता है उन्हें विरूद कहा जाता है।
3. **पद** – अर्थ के प्रकाशक सार्थक शब्दों को पद कहा जाता है। पद अर्थ का प्रतिपादक और स्वर का आधार होता है। 'पद' प्रबन्ध को अर्थ प्रदान करता है। पद स्वयं विषयवस्तु होता है। इससे यह स्पष्ट हुआ कि प्रबन्ध के अन्तर्गत कविता या साहित्य की रचना में प्रयुक्त होने वाले शब्दों को 'पद' की संज्ञा दी जाती है। भरत ने पद को दो भागों में विभक्त किया है – 1. निबद्ध (सताल) तथा 2. अनिबद्ध (अताल)। सताल के अन्तर्गत चार धातुओं और छह अंगों से निबद्ध रचनायें आती हैं और अताल के अन्तर्गत आलाप्ति अथवा आलाप आते हैं। परन्तु भरत के पद के व्यापक अर्थ को स्वीकार किया है। प्रबन्ध के अंग के रूप में वर्णित पद के अन्तर्गत केवल वही शब्द आते हैं, जो गुणसूचक न हों क्योंकि गुणसूचक पद तो 'विरूद' होते हैं।
4. **तेन, तेन्न अथवा तेनक** – प्रबन्ध में मंगलसूचक शब्दों का प्रयोग 'तेन' कहलाता है। तेन मंगलवाचक है। जैसे ओम, जगदीश, हरि आदि। 'तत्' से अभिप्राय स्तुतिमूलक शब्दों से है। इस प्रकार प्रबन्ध में मंगलार्थक शब्दों के प्रयोग को उसका विशिष्ट अंग तेन अथवा तेनक माना गया है।
5. **पाट** – वाद्य पर बजने वाले वर्णों को 'पटाक्षर' कहते हैं। 'पाट' का वर्गीकरण उत्पादक वस्तु तथा उससे उत्पन्न होने वाली ध्वनि के ढंग के आधार पर निम्न ढंगों से किया जा सकता है :–

   (क) तन्त्रीपाट – जो किसी तन्त्रीवाद्य से उत्पन्न होते हैं, जैसे रूद्रवीणा से उत्पन्न होने वाले तक, तन इत्यादि।

   (ख) सुषिरपाट – ये वो पाटाक्षर हैं जो सुषिरवाद्यों से उत्पन्न होते हैं जैसे कौञ्च, काहला इत्यादि से उत्पन्न होने वाले थुल, थुगादि। इसके अतिरिक्त जो पटाक्षर किसी अर्थ से सम्बन्धित हैं उन्हें सार्थकपाट तथा जो किसी अर्थ से हीन होते हैं उन्हें निरर्थक पाट कहते हैं। पाटाक्षरों के अन्तर्गत शुद्ध तथा मिश्र पाटों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। वे पाटाक्षर जो घनवाद्यों से उत्पन्न होते हैं शुद्ध पाट तथा जो घन तथा सुषिर वाद्याों से उत्पन्न होते हैं, वे मिश्र पाट कहलाते हैं।

   पाटों का एक अन्य वर्गीकरण इस प्रकार हैं :–

   क. स्वर पाट – वो लयात्मक ध्वनियाँ जो सम्भवतः स्वराश्रित गायी जाती हैं।

   ख. करपाट या तालपाट – कर पाट से अभिप्राय हाथों के हथेली और उंगलियों के समायोजन से उत्पन्न होने वाली लयात्मक ध्वनियों को कहा जाता है। इन्हें हस्तपाट भी कहा जाता है। भगवान शिव के मुख से उत्पन्न पाट नागबन्ध स्वस्तिक, अलग्न, शुद्धि तथा

समस्वलित हैं। इनसे कुल पैंतीस पाटों का निर्माण होता है जिसका सम्बन्ध मुख्यतः अवनद्ध वाद्यों से उत्पन्न होने वाली ध्वनियों से हैं। कालान्तर में अवनद्ध पाट ही प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार पाट गीत प्रबन्धों के अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग होते हैं जबकि नृन्त प्रबन्धों का तो ये अभिन्न अंग होते हैं।

6. **ताल** – संगीत क्रिया में लगने वाले समय के माप को ताल कहा जाता है। ताल संगीत की संगति में प्रयुक्त किया जाता है। ताल एक निश्चित मात्राओं की संख्या से निर्मित होती है। ताल समस्त प्रबन्धों में विद्यमान रहता है। स्वर के समान ताल को भी प्रबन्ध का अभिन्न अंग कहा गया है।

इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि प्रबन्ध के छः अंग स्वर, विरूद, पद, तेन, पाट और ताल थे। प्रबन्ध के स्वर नामक अंग को सभी ग्रन्थकारों द्वारा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। स्वर सांगीतिक संरचना के गेयात्मक रूप का आधार है। विरूद प्रबन्ध का साहित्यिक पक्ष है, जो कि प्रबन्ध में वर्णित नायक की गुणस्तुति सूचक शब्दों का प्रयोग दर्शाता है। पद प्रबन्ध के मातु पक्ष का सूचक है। पद और विरूद आपस में बहुत समीपता से जुड़े हुए हैं। पाट वाद्याक्षरों के लिए प्रयुक्त होने वाली संज्ञा है। तेनक प्रबन्ध में प्रयुक्त होने वाले मंगलार्चक पदों को कहा जाता है। ताल समय की मापक है और समस्त प्रबन्धों में विद्यमान रहती है।

प्रबन्ध की जाति – प्रबन्धों में प्रयुक्त अंगों की संख्या के आधार पर जाति का निर्माण होता है। प्रबन्धों की मेदिनी, आनन्दिनी, दीपनी, भावनी तथा तारावली ये कुल पाँच जातियाँ थी जिनमें क्रमशः छः अंगों से लेकर दो अंगों तक का प्रयोग किया जाता था। अर्थात् मेदिनी में छः, आनन्दिनी में पाँच, दीपनी में चार, भावनी में तीन तथा तारावली में दो अंगों का होना आवश्यक था।

2.3.3 प्रबन्ध की धातु – धातु शब्द की संरचना 'धा' धातु में 'तुन्' प्रत्यय लगाने से हुई है, जिसका अर्थ एक भाग अथवा घटक होता है। शास्त्रकारों द्वारा धातु शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया गया है तथा किसी भी संरचना के गेय पक्ष को धातु कहा जाता है। वीणा आदि वाद्यों पर प्रहार करने उत्पन्न ध्वनियों को भी धातु कहा जाता है।

वस्तुतः पद तथा ताल के समन्वय से धातु की उत्पत्ति होती है। प्रबन्ध के अवयव को धातु कहा गया है। प्रबन्ध की मुख्य चार धातुएं होती है – 1. उद्ग्राह, 2. मेलापक, 3. ध्रुव तथा 4. आभोग।

1. **उद्ग्राह** – प्रबन्ध का प्रथम धातु उद्ग्राह कहलाता है। उद्ग्राह का अर्थ प्रारम्भ या शुरूआत होता है। प्रबन्ध का उद्ग्राह जिस भाग से किया जाता है उसे उद्ग्राह कहा जाता है।
2. **मेलापक** – 'मेलापक' का अर्थ है मेल करवाने वाला। मेलापक प्रबन्ध का एक प्रासंगिक लक्षण है, जिसका प्रयोजन प्रबन्ध के प्रथम भाग 'उद्ग्राह' तथा तृतीय भाग ध्रुव को जोड़ना होता है। यह वह भाग होता है जो उद्ग्राह और ध्रुव को मिलाता है। यह प्रबन्ध का द्वितीय धातु होता है जिसमें प्रबन्ध पूर्णतः विकसित होता है। इसी की संज्ञा मेलापक भी है।
3. **ध्रुव** – प्रबन्ध में जिस धातु का बार–बार प्रयोग किया जाये उसे 'ध्रुव' कहते हैं। बार–बार प्रयुक्त होने के कारण और इसका लोप न होने के कारण ही इसे 'ध्रुव' संज्ञा प्राप्त हुई।
4. **आभोग** – आभोग का शाब्दिक अर्थ है परिपूर्णता। प्रबन्ध का अन्तिम भाग या उसे पूर्ण करने वाला अन्तिम धातु होने के कारण इस धातु की संज्ञा 'आभोग' है। प्रबन्ध का यह धातु कवि नाम या नायक के नाम से युक्त होता है।

2.3.3 प्रबन्धों के भेद :–

धातुओं के आधार पर प्रबन्ध के भेद – धातुओं के आधार पर प्रबन्ध के तीन भेद पाये जाते हैं – चतुर्धातु, त्रिधातु एवं द्विधातु। चतुर्धातु प्रबन्धों में चारों धातुओं का प्रयोग किया जाता था। त्रिधातु प्रबन्धों में मेलापक नहीं होता था। द्विधातु प्रबन्धों में उद्ग्राह तथा ध्रुव नामक धातु अनिवार्य थे। प्रबन्धों की रचना में कम से कम दो धातुओं का होना अनिवार्य था।

शास्त्रग्रन्थों में प्रबन्ध भेदों का उल्लेख मुख्यतः दो प्रकार से किया गया है – 1. लक्षणों के आधार पर तथा 2. प्रयोग के आधार पर। इनमें से प्रत्येक के तीन वर्ग हैं :–

क. 1– निर्युक्त	2– अनिर्युक्त तथा	3– उभयात्मक प्रबन्ध
ख. 1– सूड	2– आलि	3– विप्रकीर्ण प्रबन्ध

क. 1. निर्युक्त – जिन प्रबन्ध रचनाओं में विशिष्टतः ताल, छन्द, राग, वर्ण, रस, भाषा आदि के नियम निश्चित थे तथा उन नियमों में परिवर्तन नहीं किया जा सकता था, उन्हें निर्युक्त अथवा निबद्ध प्रबन्ध कहा जाता था।

2. अनिर्युक्त – जिन प्रबन्धों में ताल, छन्द, गण, वर्ण, अलंकार, रस, भाषा आदि का स्वेच्छा से प्रयोग किया जाता था उनको अनिर्युक्त प्रबन्ध कहा जाता था।

3. उभयात्मक प्रबन्ध – जिस गीत में कहीं अंग और कहीं छन्द हो, वे उभयात्मक प्रबन्ध कहलाते थे।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि प्रयोग कि आधार पर प्रबन्धों के तीन भेद थे। प्रबन्धों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वर्गीकरण शुद्ध, आलि तथा विप्रकीर्ण वर्ग का था क्योंकि इन्हीं के अन्तर्गत हमें अनके प्रबन्धों का विवरण प्राप्त होता है। इन भेदों के अन्तर्गत कौन–कौन से प्रबन्ध प्रचलित थे तथा उनकी क्या विशिष्टता थी इसकी यहाँ चर्चा करेंगे।

1. **सूड प्रबन्ध** – सूड को सूढ भी कहा जाता है। सूड से अभिप्राय विशुद्ध से है। सूड प्रबन्धों का एक निश्चित संगठित रूप होता था जिसका गान एक निश्चित क्रम में किया जाता था। संगीत रत्नाकर में सूड के दो भेद – शुद्ध सूड तथा सालगसूड वर्णित किये गये हैं। शुद्ध सूड के आठ उप भेद प्राप्त हैं – 1. एला 2. करण 3. ढेटी 4. वर्तनी, 5. झोम्बड़, 6 लम्भ, 7. रास तथा 8. एकताली। शुद्ध सूड प्रबन्धों के इन उपभेदों की रचना निम्नलिखित आधारों पर की गयी प्रतीत होती है।

1. गण, वर्ण मात्रा आदि के विशेष प्रयोग के आधार पर।
2. प्रबन्धों में प्रयुक्त अंगों के विशेष समायोजन के आधार पर।
3. अलंकार विशेष के प्रयोग के आधार पर।
4. छन्दों की विशेष समायोजन के आधार पर।
5. भाषा विशेष के प्रयोग के आधार पर।
6. प्रबन्धों के मन्द्र या तार स्थानकों में गाये जाने के आधार पर।
7. प्रबन्ध में प्रयुक्त धातुओं में से उद्ग्राह ध्रुवादि को विशेष प्रकार से गाये जाने के आधार पर।
8. गमक के प्रयोग के आधार पर।

इन विशेषताओं के आधार पर आठ सूड प्रबन्धों के अवान्तर उपभेद भी बनते हैं।

सालग सूड प्रबन्ध – सूड प्रबन्धों का द्वितीय भेद सालगसूड प्रबन्ध था। सालग शब्द से अभिप्राय छायालग से है। संगीत शिरोमणि में छायालग प्रबन्धों के विषय में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया

गया है कि जब किसी वस्तु की छाया भिन्न राग, ताल, ग्रह, लय, धातु व मातु की संरचना एवं भिन्न अलंकारों से युक्त प्रबन्धों में रंजकता और माधुर्य के लिये प्रयुक्त होती है तो उसे सालग गीत कहा जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि राग, ताल, ग्रह आदि सभी विशिष्टताओं से युक्त प्रबन्धों में जब किसी अन्य वस्तु का प्रयोग अल्प मात्रा में रक्ति और माधुर्य के लिये छाया के रूप में अर्थात् अल्पमात्रा में किया जाता था तो उन्हें सालगसूड प्रबन्ध कहा जाता था। इसका अभिप्राय यह है कि सूड प्रबन्धों के निश्चित नियमों में शैथिल्य से इनका निर्माण होता था।

सालग सूड प्रबन्ध – ध्रुव, मण्ठ, प्रतिमण्ठ, निःसारूक, अड्डताल, रासक व एकताली, इस प्रकार कुल सात थे जिनके अन्तर्गत विभिन्न उपभेदों का प्रचलन था।

2. **आलिप्रबन्ध** – शास्त्रग्रन्थों में वर्णित प्रबन्धों के तीन भेदों के अन्तर्गत दूसरे भेद की संज्ञा आलि है। यूँ तो आलि का अर्थ पंक्ति या सखि होता है लेकिन प्रबन्धों में आलि शब्द का अर्थ पंक्ति के रूप में ग्राह्य है। शास्त्रग्रन्थों में आलिप्रबन्धों की संख्या में मतभेद दिखायी देता है। संगीत रत्नाकर में आलि प्रबन्धों की संख्या 32 बतायी गयी है। 24 आलिप्रबन्ध तथा आठ सूड प्रबन्धों को भी आलि में जोड़ लेने पर सूड और आलि के सम्बन्ध से वे बत्तीस हो जाते हैं।

3. **विप्रकीर्ण प्रबन्ध** – प्रबन्धों का तीसरा वर्ग विप्रकीर्ण प्रबन्ध वर्ग कहलाता है। मानसोल्लास में स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख किया गया है कि विप्रकीर्ण प्रबन्ध लौकिक वर्ग के हैं। इन प्रबन्धों को सूड प्रबन्धों के साथ नहीं गाया जाता। इन्हें विशिष्ट अवसर तथा विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त बताया गया है। उदाहरण के लिए जैसे कथाओं में षटपदी का प्रयोग, विवाह में धवल, उत्सव में मंगल नामक प्रबन्ध को गेय तथा चर्या को योगीजनों द्वारा गेय वर्णित किया गया है। प्रकीर्ण का अर्थ अलग–अलग या बिखरा हुआ होता है। इससे यह अभिप्रेत है कि विप्रकीर्ण वर्ग के प्रबन्धों को अलग– अलग स्वतन्त्र रूप से गाया जाता था। संगीत रत्नाकर में विप्रकीर्ण प्रबन्धों की संख्या 36 बतायी गयी है। इनमें से अधिकतर प्रबन्धों के विषय में उनमें प्रयुक्त राग व ताल के संदर्भ में केवल संख्या का ही निर्देश दिया गया है। जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनमें निर्धारित संख्या के अन्तर्गत राग व ताल का प्रयोग स्वेच्छा से किया जाता था। राग व ताल के वैविध्य के प्रयोग से युक्त ये प्रबन्ध सरल एवं लोकरंजक थे।

शास्त्रग्रन्थों में गेय प्रबन्धों के अतिरिक्त नृत्य तथा वाद्य की विशिष्ट विधाओं के रूप में प्रचलित प्रबन्ध के अन्य प्रकार नृत्य तथा वाद्य प्रबन्धों के रूप में प्राप्त होते हैं। वे पद जिनमें किसी भी छन्द का आभास होता है पद्य तथा उससे विमुक्त संरचना गद्य कहलाती है। चिन्तन में पद्य के समान रस सृजन करना कठिन होता है। अतः यह कलाकार के कौशल की कसौटी माना जा सकता है। गद्य प्रबन्धों के नाना भेद शास्त्रग्रन्थों में वर्णित है। प्रबन्धों को तालिका में स्पष्ट समझा जा सकता है।

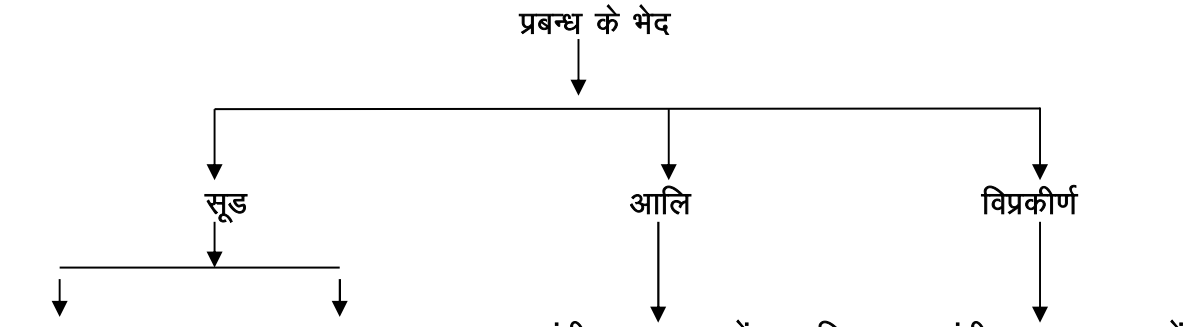

	शुद्ध सूड के आठ भेद हैं		सालग सूड प्रबन्ध के सात भेद हैं		संगीतरत्नाकर में आलि प्रबन्धों की संख्या 32 कही है		संगीत रत्नाकर में 36 विप्रकीर्ण प्रबन्ध कहे हैं
1	एला	1	ध्रुव	1	वर्ण	1	श्रीरङ्ग
2	करण	2	मण्ठ	2	वर्णस्वर	2	श्रीविलास
3	ढेटी	3	प्रतिमण्ठ	3	गद्य	3	पञ्चभङ्गी
4	वर्तनी	4	निःसारूक	4	कैवाड़	4	पञ्चानन
5	झोम्बड	5	अड्डताल	5	अङ्कचरिणि	5	डमातिलक
6	लम्भ	6	रासक	6	कन्द	6	त्रिपदी
7	श्रास	7	एकताली	7	हयलीला	7	चतुष्पदी
8	एकताली			8	गजलीली	8	षट्पदी
				9	द्विपदी	9	वस्तु
				10	चक्रवाल	10	विजय
				11	क्रौञ्चपद	11	त्रिपथ
				12	स्वरार्थ	12	चतुर्मुख
				13	ध्वनिकुट्टनी	13	सिंहलील
				14	आर्या	14	हंसलील
				15	गाथा	15	दण्डक
				16	द्विपथ	16	झम्पट
				17	कलहंस	17	कन्दुक
				18	तोटक	18	त्रिभङ्गी
				19	घट	19	हरविलास
				20	वृत्त	20	सुदर्शन
				21	मातृका	21	स्वराङ्क
				22	रागकदम्ब	22	श्रीवर्धन
				23	पञ्चतालेश्वर	23	हर्षवर्धन
				24	तालार्णव	24	व्दन
					आठ सूड प्रबन्धों को आलि में जोड़ देने से सूड और आलि के सम्बन्ध से वे 32 हो जाते हैं।	25	चच्चरी
						26	चर्या
						27	पद्धडी

28 राहडी़
29 वीरश्री
30 मगलाचार
31 धवल
32 मङ्गल
33 टोवी
34 लोल्ली
35 ढोल्लरी
36 दन्ती

इस प्रकार आपने देखा कि गेय प्रबन्धों के पद्य एवं गद्य दोनों रूप प्रचलित रहे हैं। यहाँ यह भी चर्चा करना आवश्यक है कि गेय प्रबन्धों के अतिरिक्त वाद्य तथा नृत्य प्रबन्ध भी प्रचलित रहें हैं।

नृत्य प्रबन्ध – प्रबन्धों का एक प्रकार नृत्य प्रबन्धों के रूप में प्राप्त होता है। वास्तव में विशिष्ट अंग प्रयोग, करण प्रयोग, अङ्गहारों, चारियों, स्थानकों और विशेष से सम्बन्धित होने के कारण इन सभी नृत्य भेदों को नृत्य प्रबन्ध कहा जा सकता है। इस तरह नृत्य प्रबन्धों का आदि रूप उपरूपकों में दृष्टिगोचर होता है। नृत्य की तीन पद्धतियॉ थी – शुद्धपद्धति, गौण्डली या देशी पद्धति तथा पेरणी पद्धति। नृत्य की इन तीनों पद्धतियों में गेय तथा वाद्य प्रबन्धों का प्रयोग किया जाता था। नृत्य से सम्बन्धित होने के कारण नृत्य प्रबन्धों के अनेक भेदों का प्रचलन था।

वाद्य प्रबन्ध – गद्य तथा नृत्य प्रबन्धों के अतिरिक्त एक प्रकार वाद्य प्रबन्धों के रूप में प्राप्त होता है। गेय प्रबन्धों के समान ही उद्ग्राह आदि धातुओं से समन्वित वाद्य प्रबन्धों में विभिन्न पाटाक्षरों की समायोजना के आधार पर अनेक भेद संरवित होते थे। गेय प्रबन्धों के समान ही वाद्य प्रबन्धों में भी तालहीन संरचनाओं का प्रचलन भी था। जैसे अन्तर पाट नामक प्रबन्ध इसका उदाहरण है। अनेक वाद्य प्रबन्धों का सम्बन्ध विशेष वर्ग के गेय प्रबन्धों से तथा नृत्य से भी था। गेय प्रबनधों के समान ही अनेक वाद्य प्रबन्ध में आधुनिक वादन शैलियों का मूल विद्यमान है।

प्रबन्ध की विषय वस्तु – प्रबन्धों में पद एक महत्वपूर्ण अंग है। इसी के साथ तेन और विरूद अंग भी साहित्य से सम्बन्धित है। इसलिए प्रबन्ध की विषय वस्तु पर विचार करना आवश्यक है। वस्तुतः प्रबन्धों में वर्णित विषय वस्तु का क्षेत्र अतिव्यापक है। फिर भी प्रबन्धों का मूलतः विषय स्तुतिपरक तथा मंगलार्थक होता था। अनेक प्रबन्धों में ऋृतुवर्णन भी प्राप्त होता है। विषय वस्तु की दृष्टि से प्रबन्ध के तीन वर्ग हो सकते हैं।

1. राजनैतिक 2. सामाजिक 3. आध्यात्मिक

1. **राजनैतिक प्रबन्ध** – इस वर्ग के अन्तर्गत उन प्रबन्धों को रखा जा सकता है जिनका विषय राजा के व्यक्तित्व से सम्बन्धित गुणों का वर्णन था। जैसे वीरता से युक्त कार्यों तथा पराक्रमों का वर्णन, दानशीलता त्याग, सौभाग्य, धैर्य, कीर्ति आदि गुणों का वर्णन तथा विलास, वैभव आदि का वर्णन।
2. **सामाजिक प्रबन्ध** – इस श्रेणी के प्रबन्धों में उन प्रबन्धों की गणना की जा सकती है जो किसी ऋृतुविशेष, पर्व या उत्सव या फिर समाज के वर्ग विशेष से सम्बन्धित होते थे। जैसे वसन्त ऋृतु में गेय माधवोत्सव कमलाकर, फागुनोत्सव से सम्बन्धित चच्चरी तथा धम्माली, विभिन्न ऋृतुओं से युक्त कुसुमाकर, ऋृतुप्रकाश आदि। इसी प्रकार विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले मंगल, घट, उमातिलक आदि प्रबन्ध हैं। इसके अतिरिक्त जन्म के समय पर गाया जाने वाला कमलसंभव आदि

इसी श्रेणी का प्रबन्ध है। योगियों द्वारा गाया जाने वाला 'ओवी' तथा ग्वालों के द्वारा गाये जाने वाले दन्ती की गणना भी इसी वर्ग के प्रबन्धों में की जाती है।

3. **आध्यात्मिक प्रबन्ध** – आदि काल से ही संगीत का सम्बन्ध धर्म से रहा है। इस बात का प्रमाण वैदिक संगीत में भी मिलता है। सामगान के द्वारा देवी–देवताओं की उपासना तथा यज्ञों में साम का गायन किया जाता था। पाँच भक्तियों (हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव एवं निधन) में साम का गान किया जाता था। प्रबन्ध के छः अंगों में 'तेन' नामक अंग भक्तिवाचक पदों के प्रयोग का सूचक है। प्रबन्धों में सामान्यतः सगुण ब्रह्म की उपासना की गयी है। मानसोल्लास में स्पष्ट रूप से लिखा है कि भगवान विष्णु की आराधना प्रबन्ध के माध्यम से करनी चाहिये। अनेक प्रबन्धों का नामकरण भी देवी देवताओं के आधार पर किया गया है। जैसे भोम्बड नामक प्रबन्ध के ब्रह्मा, विष्णु, चक्रेश्वर, चण्डिकेश्वर, भैरव आदि उप भेद हैं। आर्या के लक्ष्मी, गौरी, रोहिणी व शिवा आदि उपभेद हैं। इसी तरह सामाजिक कर्म विवाहादि भी किसी न किसी रूप में धर्म तथा आध्यात्म से जुड़े रहते हैं। अतः धर्म साधना से संगीत का गहरा सम्बन्ध है।

2.4 प्रबन्ध की ध्रुपद से तुलना

प्रबन्धों के विवरण एवं उनके भेदों के उल्लेख से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि प्रबन्ध शैली मध्यकाल में उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित थी। संगीत शास्त्र ग्रन्थों में प्राप्त सन्दर्भों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस शैली का प्रचलन लगभग अठारहवीं शताब्दी तक रहा। यह भी सत्य है कि चौदहवीं शताब्दी तक भारत वर्ष में मुस्लिम राज्य स्थापित हो चुका था। अनेक सामाजिक व राजनैतिक गतिविधियों के फलस्वरूप यवनों की कला व संस्कृति का प्रभाव भारतीय संगीत पर पड़ना स्वाभाविक था। यवनों के प्रवेश के समय भारत में सांगीतिक प्रबन्ध शैली का सर्वत्र प्रचार था। प्रबन्ध शैली अत्यन्त कठोर नियमों से बद्ध थी और उसके पदों में सामान्यतया संस्कृत भाषा का प्रयोग किया जाता था। मुस्लिम शासक व कलाकार संस्कृत भाषा व संगीत के छन्द, गणनियम, रीति एवं अलंकार आदि नियमों से अनिभिज्ञ थे। अतः सैद्धान्तिक रूप में प्रबन्धों के नियमों में शिथिलता के फलस्वरूप प्रबन्ध शैली ध्रुपद, ख्याल आदि के रूप में विकसित हुई। ध्रुपदों में आरम्भ में मूलतः संस्कृत भाषा का प्रयोग किया जाता था तथा उस पर प्रबन्धों का पूर्ण प्रभाव था। इनका साहित्य प्रबन्धों के समान स्वाभाविक रूप से सुन्दर, प्रभावपूर्ण, ईश्वर तथा देवी–देवताओं की स्तुति एवं आराधना से युक्त था। कालान्तर में इनमें प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग, ऋतु एवं प्रकृति का वर्णन, राजा तथा नायक की प्रशंसा से युक्त पदों का समावेश होने लगा। ग्वालियर नरेश राजा मानसिंह तोमर के राज्यकाल में प्रबन्ध शैली अपनी बदली हुई अवस्था में यानि ध्रुपद के रूप में, निश्चित रूप लेकर स्थापित हो चुकी थी। इसीलिए राजा मानसिंह तोमर को ध्रुपद शैली का प्रवर्तक माना गया।

ध्रुपद एक वयोवृद्ध शैली है। इसे स्वर, ताल व पद के उत्कृष्ट तथा विशुद्ध प्रयोग के कारण अत्यन्त कठिन एवं श्रम साध्य शैली माना गया है। प्रबन्ध के रूप में ये ब्रज भाषा एवं हिन्दी में रचे गये ऐसे गीत हैं जिनमें भक्ति, राजा की स्तुति, मंगलोत्सव, पुराणविषयक कथाएँ, संगीत शास्त्र के ग्राम, मूर्च्छना, श्रुति, स्वर आदि अनेक विषयों का निरूपण होता है।

ध्रुपद की गायन शैली को मुख्यतः चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है। 1. नोमतोम में आलाप 2. बन्दिश का गान 3. लयकारी का प्रदर्शन तथा 4. उपज का काम। शास्त्रीय भाषा में इन्हें रागालप्ति, गीत, लयवैचिन्त्र्य और रूपकालप्ति कहा जाता है। आरम्भ में नोम–तोम शैली के आलाप से प्रबन्धों के 'तेन' नामक अंग का साम्य दिखायी देता है। किन्तु दोनों में अन्तर यह प्रतीत होता है कि यह नोमतोम तालरहित होता है ताकि 'तेन' नामक अंग का प्रयोग प्रबन्धों के बीच में तालबद्ध रूप में किया जाता है। ध्रुपद का आलाप आरम्भ में लय रहित होता है किन्तु धीरे–धीरे लयबद्ध रूप में गाया जाता है तथा अन्तिम भाग तक गमक युक्त तान का रूप धारण कर लेता है।

ध्रुपद संरचनाएं मूलतः भक्तिवाचक होने के कारण ही संभवतः उनमें आरम्भ में आलाप में भी भक्तिवाचक पदों का प्रयोग नोमतोम शैली के आलाप के रूप में ग्रहण किया गया था। यही परम्परा आज तक प्रचलित है। इसमें आरम्भ में अताल आलाप की परम्परा का साम्य पञ्चतालेश्वर नामक प्रबन्ध के आरम्भ में अताल आलाप की परिपाटी में देखा जा सकता है। कुछ विद्वानों का यह मत है कि नोमतोम के आलाप में ही प्राचीन रागालप्ति के स्वरस्थान नियमों की परम्परा के दर्शन भी होते हैं। इसके बाद गीत की बन्दिश को मध्यलय में गाया जाता है। तत्पश्चात् दुगुन, तिगुन, चौगुन जैसी सरल तथा आड़ी, कुआड़ी, बियाड़ी जैसी क्लिष्ट लयकारियों का प्रदर्शन किया जाता है।

आप यह ध्यान में रखिये कि ध्रुपदों में प्रबन्धों के समान चार धातुओं स्थाई, अंतरा, संचारी तथा आभोग का प्रयोग किया जाता रहा है। किन्तु आजकल प्रायः स्थायी तथा अंतरा इन दो धातुओं से युक्त ध्रुपदों का प्रयोग प्रचलन में दिखायी पड़ता है। ध्रुपद की विभिन्न राग–रागिनियों में और चौताल, सूलताल आदि छोटे तथा ब्रह्मा, सवारी मत्त आदि लम्बे तालों में गाया जाता है। इसके साथ पखावज पर संगति की जाती है। इसके गायन में किसी प्रकार के खटके और मुर्कियों का प्रयोग नहीं किया जाता।

इस प्रकार प्रबन्ध की दृष्टि से ध्रुपद का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि शुद्ध व सालग सूड प्रबन्धों के साथ नृत्य करने की परम्परा पहले ध्रुपदों के साथ नृत्य करने की परम्परा थी। आजकल ऐसा नहीं होता। आजकल ध्रुपदों में प्रायः दो धातुओं की समायोजना की जाती है। गेय ध्रुपदो में पद तथा विरूद नामक अंगों का प्रयोग दिखायी पड़ता है। ताल व स्वर में बद्ध होने के कारण इसके अंगों में स्वर तथा ताल की गणना हो जाती है। कुछ ऐसे भी ध्रुपद पाये जाते हैं जिनमें कहीं–कहीं तेनक' पद तथा पाटाक्षरों का प्रयोग भी किया जाता है। इस प्रकार अंग व धातुओं से समन्वित प्रबन्धों का साम्य आधुनिक द्विधातुक, त्रिधातुक तथा स्वर, पद, विरूद, ताल आदि अंगों से युक्त ध्रुपदों में देखा जा सकता है। ध्रुपदों के गायक अपनी साधना के अुनसार ध्रुपद का गायन करते हैं। फिर भी निजी विशेषतओं के कारण आज ध्रुपद की चार वाणियां दृष्टिगोचर होती है। जैसे डागुर वानी, गोबरहार वानी, खंडार वानी तथा नौहार वानी। इन बानियों को इस प्रकार समझा जा सकता हैं :–

1. **डागुर बानी** – डागुर बानी के प्रवर्तन स्वामी हरिदास माने जाते हैं। कुछ विद्वान ब्रजचन्द को डागुर बानी का प्रवर्तक मानते हैं। डागुर बानी भिन्न गीति से मिलती हे। भिन्ना गीति मे मींड का प्रयोग वक्र रूप में मधुर व विलक्षण गमकों के साथ होता है।
2. **गोबरहार बानी** – इस बानी के निर्माता मियां तानसेन माने जाते हैं। ध्रुपद की बानियां अकबर के शासनकाल के बाद प्रचलित हुई मानी जाती हैं। गौरारी ग्वालियर की भाषा अथवा बानी को कहा है। जिसे तानसेन ने अपने ध्रुपदों में शुद्ध वाणी कहा है। गोबरहार बानी शास्त्रों में वर्णित शुद्धा गीति से मिलती है। इसमें मींड का प्रयोग राग के अनुकूल सीधे स्वरों में किया जाता है।
3. **खंडार बानी** – इस बानी के प्रवर्तक राजा समोखन हैं। खण्डार दुर्ग बाबरनामा में उल्लिखित हैं। खण्डार क्षेत्र के निवासियों की भाषा भी खण्डारी हैं। उसी कारण इसका नाम खंडार वानी है। खंडार बानी बेसरा गीति के समान है। इसमें तेज गमकों का प्रयोग किया जाता था।
4. **नौहार बाणी** – नौहार बानी के प्रवर्तक हाजी सुजान खां थे। हाजी साहब मियां तानसेन के दामाद थे। कुछ लोग श्रीचन्द्र राजपूत को इस गायकी का प्रवर्तक मानते हैं। नौहार बानी कुछ–कुछ गौड़ी गीति से मेल खाती है। इसमें गमकों का प्रयोग कुछ उछाल के रूप में किया जाता था।

इस प्रकार ध्रुपद का प्रबन्ध से बहुत साम्य है। वस्तुतः ध्रुपद प्रबन्ध का ही विकसित रूप है।

2.5 प्रबन्ध की ख्याल से तुलना

ख्याल आधुनिक समय में प्रचलित सर्वाधिक लोकप्रिय गायन शैली है। इसकी संरचना सामान्यतः उत्तर भारतीय भाषाओं यथा ब्रज, हिन्दी, पंजाबी व राजस्थानी आदि भाषाओं में होती है। इसकी विषय वस्तु सामान्यतः राजस्तुति, नायक–नायिका वर्णन, श्रृंगार रस सम्बन्धी परिस्थितियों तथा विरह प्रसंग से सम्बन्धित होती है। इसमें प्रयुक्त पदों में सामान्यतः अनुप्रास युक्त पदों की समायोजना दिखायी देती है। इनमें प्रयुक्त पदों में सामान्यतः अक्षर संख्या, मात्रा, छन्द आदि का निश्चित नियम प्रत्यक्ष रूप में दिखायी नहीं देता। इसके स्थायी व अंतरा नामक दो खण्ड होते हैं। स्वर रचना की दृष्टि से सामन्यतः स्थायी का चलन मन्द्र व मध्य सप्तक में रहता है। किन्तु कभी–कभी राग के चलन के अनुरूप इसमें स्थायी का उठान तार सप्तक के स्वरों में भी किया जाता है। इसकी प्रस्तुति में आलाप, शब्दालाप, बहलावा, तान, बोलतान आदि से विस्तार किया जाता है। इसके साथ सामान्यतः एकताल, आड़ाचौताल, तिलवाड़ा, झूमरा, तीनताल आदि तालों का प्रयोग किया जाता है।

ख्याल के इतिहास को जानने से यह बात सामने आती है यह शैली अठारहवीं शताब्दी तक निश्चित लोकप्रिय रूप धारण कर चुकी थी। ख्याल शैली में ध्रुपद की शुद्धता के स्थान पर सौन्दर्य पक्ष को प्रबलता मिली। अदारंग–सदारंग द्वारा संरचित अधिकांश ख्यालों में मुख्यतः राजस्तुति या नायक–नायिका के आपसी सम्बन्धों का वर्णन है। कुछ बन्दिशों में ऋतुवर्णन तथा विवाह जैसे सामाजिक कृत्यों का वर्णन भी प्राप्त होता है।

वास्तव में ख्याल का आधुनिक रूप ध्रुपद के नियमों को अपेक्षाकृत सरल कर देने से प्रतीत हुआ होता है। डॉ0 सुमति मुटाटकर के अुनसार स्वराश्रित गान के आधार पर ध्रुपद का विकसित रूप ख्याल कहलाया। ध्रुपद की तुलना में ख्याल में स्वर विस्तार की क्षमता, अलंकार व गमक का प्रयोग होने के कारण वह अधिक यथार्थ व विधिपूर्ण बन गया। ख्याल शैली मे नोम तोम तथा बन्दिश के आलाप, बोलबांट, बोल आलाप, विविध तिहाइयों का प्रयोग, मींड प्रधान आलाप व गमक के प्रयोग में ध्रुपद का प्रभाव पूर्णतः परिलक्षित होता है। आचार्य बृहस्पति ने इस बात की ओर संकेत किया है कि ख्याल में ध्रुपद की कुछ विशेषतायें होने के कारण वह बडा या लंगड़ा ध्रुपद कहलाता था। यहाँ यह बात पुनः उल्लेखनीय है कि मध्यकाल के उत्तरार्ध में प्रबन्ध शैली ही ध्रुपद के रूप में विकसित होकर प्रचलित हुई तथा ख्याल की रचना का आधार ध्रुपद शैली को ही माना जाता है। ध्रुपद के समान ख्याल में भी सामान्यतः एक चरण की समायोजना ताल के एक आवर्तन में की जाती है। ख्याल की बन्दिश के बीच में आलाप लेने की परम्परा का साम्य शुद्ध वर्ग के रासक नामक प्रबन्ध के विभिन्न उप भेदों तथा विप्रकीर्ण वर्ग के कमलानन्द नामक प्रबन्ध में देखा जा सकता है। प्रबन्धों के समान ही ख्याल में भी स्तुत्य व रचनाकर से युक्त पदों का प्रयोग किया जाता है। इनमें प्रयुक्त तानों का मूल वर्तनी नामक प्रबन्ध तथा आलि वर्ग के स्वरार्थ नामक प्रबन्धों में देखा जा सकता है। अतः उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर ख्याल को कालान्तर में हुए प्रबन्ध के विकास का अधुना प्रचलित रूप माना जा सकता है। जैसे राग जौनपुरी में मध्यलय तीनताल में एक बन्दिश है – 'पायल की झनकार बैरनिया, झन झन बाजे कैसे मोरे पिया को मिलन को जाऊँ' इस बन्दिश में स्थायी व अंतरा में तीन–तीन पदों का प्रयोग किया गया है। स्वर, पद व ताल से युक्त इस बन्दिश को द्विधातुक व तीन अंगों से समन्वित आधुनिक प्रबन्ध कहा जा सकता है।

इसी प्रकार धमार, चतुरंग, त्रिवट, सरगमगीत आदि आधुनिक प्रचलित गायन शैलियों का मूल विभिन्न प्रबन्धों में देखा जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. प्रबन्ध के ..... अंग होते हैं।
2. प्रबन्ध की मुख्यतः ..... धातुएं होती हैं।
3. प्रबन्ध में मंगलसूचक शब्दों का प्रयोग ..... कहलाता है।
4. प्रबन्धों की कुल ..... जातियाँ थी।
5. प्रबन्ध में जिस धातु का बार–बार प्रयोग किया जाये उसे ..... कहते हैं।
6. प्रबन्धों की रचना में कम से कम ..... धातुओं का होना अनिवार्य था।
7. संगीत रत्नाकर में सूड के ..... भेद बताए गये हैं।
8. शुद्ध सूड के ..... उपभेद बताए गये हैं।
9. संगीत रत्नाकर में आलि प्रबन्धों की संख्या ..... बतायी गयी है।
10. संगीत रत्नाकर में विप्रकीर्ण प्रबन्धों की संख्या ..... बतायी गयी है।

ख. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. प्रबन्ध किसे कहते हैं?
2. प्रबन्ध के अंगों के विषय में टिप्पणी लिखिए।
3. प्रबन्ध की धातु के विषय में समझाइए।
4. प्रबन्ध की भाषा तथा विषय वस्तु क्या होती है?बताइए।
5. प्रबन्ध का ध्रुपद तथा ख्याल से क्या सम्बन्ध है?बताइए।

2.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप प्रबन्ध के विषय में जान चुके होंगे। आप समझ गये होंगे कि मनुष्य हृदय की सहज अभिव्यक्ति संगीत के रूप में प्रस्फुटित हुई। कालान्तर में इसी अभिव्यक्ति पर चिन्तन मनन के द्वारा सिद्धान्तों का निर्माण किया। यह सिद्धान्त सामान्य भाषा में प्रबन्ध कहलाया। प्रबन्ध का अर्थ है विशिष्ट रूप से बाँध देना। कला को नियमों में बांध देने से उसमें स्थायित्व आता है तथा अध्ययन–अध्यापन में सुगमता आती है। धीरे–धीरे प्रबन्ध एक विशेष प्रकार की गायन शैली के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। सामगान में जिस प्रकार बने थे उसी का विकास भरत के समय में ध्रुवा के रूप में हुआ। संगीत के नियमों से बंधी विशिष्ट रचना को प्रबन्ध का नाम मध्यकाल में प्राप्त हुआ। प्रबन्ध उस समय में प्रचलित एक गायन विधा थी जिसे 'वस्तु' तथा 'रूपक' की संज्ञा भी प्राप्त हुई। प्रबन्ध के छः अंग स्वर, विरूद, पद, तेन, पाट तथा ताल थे। इन्हीं अंगों की संख्या के आधार पर पाँच जातियां बनी। प्रबन्ध की चार धातु है– उदग्राह, मेलापक, ध्रुव तथा आभोग।

शास्त्रग्रन्थों में प्रबन्धों का तथा उनके भेदों का उल्लेख मुख्यतः दो प्रकार से किया है – 1. लक्षणों के आधार पर तथा 2. प्रयोग के आधार पर। मध्ययुग में प्रबन्ध का अत्यधिक विकास हुआ। परिणायतः प्रबन्धों के अनेक भेद प्रचलित हुए। शास्त्रों में इन प्रबन्धों के तीन भेद सूड, आलि तथा विप्रकीर्ण कहे गये हैं तथा इन तीन भेदों के आगे प्रभेद भी प्राप्त होते हैं। जैसे संगीत रत्नाकर में सूड के दो भेद शुद्ध तथा सालग कहे हैं। पुनः शुद्ध के आठ भेद तथा सालग के सात प्रभेद कहे हैं। आलि प्रबन्धों के 32 भेद तथा विप्रकीर्ण प्रबन्धों के 36 भेदों का उल्लेख है। मध्यकाल में ही एक नयी शैली प्रचार में आयी जिसे ध्रुपद कहा गया। वस्तुतः ध्रपद प्रबन्ध का ही विकसित रूप था। वर्तमान काल में ख्याल, चतुरंग, धमार, त्रिवट आदि गायन शैलियां प्रचलित हैं। जैसा कि हमने उदाहरण

सहित बताया है कि ये सब गायन शैलियां भी प्रबन्ध से ही विकसित हुई हैं। इस प्रकार यह कह सकते हैं कि सामगान, ध्रुवा गायन, प्रबन्ध गान, ध्रपद तथा फिर ख्याल यह निबद्ध संगीत के ही समय–समय पर प्रचलित रूप हैं जिनमें पूर्वा पर सम्बन्ध है और जिनके विकास की एक परम्परा है।

2.7 शब्दावली

1. प्रबन्ध – प्रकृष्ट रूप से नियमों में बंधी मध्ययुगीन एक गायन विधा
2. वस्तु – प्रबन्ध का अन्य नाम
3. रूपक – प्रबन्ध की एक अन्य संज्ञा
4. उद्रगाह – धातु का नाम
5. मेलापक – प्रबन्ध की एक धातु
6. संचारी – प्रबन्ध की धातु की संज्ञा
7. आभोग – प्रबन्ध की धातु
8. ध्रुवा – भरत के समय में प्रचलित गायन विधा
9. तरावली – प्रबन्ध की जाति
10. मेदिनी – प्रबन्ध की जाति

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. छः (स्वर, विरूद, पद, तेन, पाट व ताल)
2. चार (उद्रगाह, मेलापक, ध्रुव, आभोग)
3. 'तेन' या तेनक
4. पाँच (मेदिनी, आनन्दिनी, दीपनी, भावनी तथा तारावली)
5. 'ध्रुव'
6. दो
7. दो (शुद्ध सूड तथा सालगसूड)
8. आठ (एला, करण, ढेङ्की, वर्तनी, झोम्बड़, लम्भ, रास तथा एकताली)
9. 32
10. 36

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बहुगुणा, स्मिता, भारतीय संगीत में प्रबन्ध की अवधारणा।
2. बृहस्पति, आचार्य, ध्रुपद का विकास।
3. श्रीवास्तव, इन्दुरमा, निबन्ध संगीत।
4. श्रीवास्तव, इन्दुरमा, ध्रुपद।
5. ठाकुर, पंडित ओंकारनाथ, संगीतंजली।

2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. ध्रुपद धमार अंक, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. सिंह, ठाकुर जयेदव, भारतीय संगीत का इतिहास।

3. चौधरी, सुमद्रा(हिन्दी अनुवाद), संगीत रत्नाकर।
4. सक्सेना, मधुबाला, उत्तर भारतीय गायन शैलियों का अध्ययन।

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रबन्ध को परिभाषित करते हुए इसके अंगों का वर्णन कीजिए।
2. प्रबन्ध की धातुओं पर विस्तार से लिखें।
3. प्रबन्ध के भेदों की पूर्ण विवेचना कीजिए।
4. प्रबन्ध की ध्रुपद गायकी से तुलना कीजिए।
5. प्रबन्ध की ख्याल गायकी से तुलना कीजिए।

इकाई 3 – पाठ्यक्रम के रागों का पूर्ण वर्णन, तुलना एवं स्वर समूह द्वारा राग पहचानना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य

3.3 राग मियाँ की तोड़ी
3.3.1 परिचय
3.3.2 मुख्य स्वर संगतियाँ
3.3.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
3.4 राग गांधारी
3.4.1 परिचय
3.4.2 मुख्य स्वर संगतियाँ
3.3.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
3.5 राग गुजरी तोड़ी
3.5.1 परिचय
3.5.2 मुख्य स्वर संगतियाँ
3.5.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
3.6 राग मियाँमल्हार
3.6.1 परिचय
3.6.2 मुख्य स्वर संगतियाँ
3.6.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
3.6.4 राग दरबारी कानड़ा एवं मियाँमल्हार की तुलना
3.7 राग दरबारी कान्हड़ा
3.7.1 परिचय
3.7.2 मुख्य स्वर संगतियाँ
3.7.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
3.8 राग भीमपलासी
3.8.1 परिचय
3.8.2 मुख्य स्वर संगतियाँ
3.8.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
3.9 राग मेघ मल्हार
3.9.1 परिचय
3.9.2 मुख्य स्वर संगतियाँ
3.9.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना
3.10 सारांश
3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रदर्शन कला–संगीत में स्नातकोत्तर, तृतीय सेमेस्टर (एम0पी0ए0एम0आई0–602) पाठ्यक्रम की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप जाति गायन, राग गायन, राग लक्षण व सारणा चतुष्टयी के बारे में जान चुके होंगे। आप प्रबन्ध के विषय में भी जान चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में आपको पाठ्यक्रम के रागों का पूर्ण वर्णन दिया जाएगा जिससे आप रागों का पूर्ण परिचय प्राप्त करेंगें। राग में प्रयोग होने वाली मुख्य स्वर संगतियाँ जिनसे राग की स्थापना की जाती है इस इकाई के माध्यम से आप उनको भी जानेंगे। चलन एवं अंग के आधार पर राग एक दूसरे से मिलते हैं। अतः इस इकाई में प्रस्तुत रागों के तुलनात्मक अध्ययन से आप राग को एक दूसरे से पृथक कर पाएँगें तथा रागों को भली भाँति समझने में सक्षम होंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप अपने पाठ्यक्रम के रागों को पूर्णतया समझेंगे और मिलते–जुलते रागों का अध्ययन कर एक दूसरे से अलग कर समझेंगें, जो आपको रागों का सैद्धान्तिक पक्ष प्रस्तुत करने में सहायक होगा। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप रागों का क्रियात्मक स्वरूप में प्रस्तुतीकरण सफलता पूर्वक कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

1. पाठ्यक्रम के रागों का पूर्ण परिचय प्राप्त करेंगे।
2. स्वर समूह द्वारा रागों को पहचानेंगे।
3. रागों को एक दूसरे से पृथक कर पाएँगें।
4. रागों की सैद्धान्तिक व्याख्या एवं क्रियात्मक स्वरूप का सुन्दर तथा सफल प्रस्तुतिकरण कर सकेंगे।

3.9 राग मियाँ की तोड़ी

3.9.1 परिचय :–

तीखे मनि कोमल रिगध वादी धैवत सात।
संवादी गंधार है, तोड़ी राग बिराज।। (चन्द्रिकासार)

मनी तीव्रौ धगरायः कोमलाः स्युर्धगौ स्मृतौ।
वादि संवादिनौ यत्र तोड़ी सा संगवे मता।। (चंद्रिकायाम्)

मियाँ की तोड़ी राग तोड़ी थाट से उत्पन्न माना गया है। इस राग को तोड़ी राग भी कहते हैं। इस राग में रे ग ध स्वर कोमल, मध्यम तीव्र (म") तथा निषाद शुद्ध लगता है। इस राग का वादी स्वर धैवत तथा सम्वादी गंधार है। सातों स्वरों का प्रयोग होने के कारण इस राग की जाति सम्पूर्ण–सम्पूर्ण है। इसका गायन समय दिन का दूसरा प्रहर मान्य है। पंचम स्वर का प्रयोग इस राग में कम किया जाता है। नये विद्यार्थियों के लिए यह राग कठिन होता है। क्योंकि विकृत स्वरों का प्रयोग उचित स्थानों पर लेना मुश्किल होता है। इस थाट से उत्पन्न होने वाले 'मुल्तानी' नामक राग में ऐसी ही कठिनाई आती है। इस राग की सारी खूबी रे ग ध इन स्वरों पर अवलम्बित है, जबकि मुल्तानी राग में ग प नि यह स्वर विशेषता रखते हैं। यह पूर्वांग प्रधान राग है इसलिए इस राग में गम्भीरता बनी रहती है।

समप्रकृतिक राग – गुजरी तोड़ी, विलासखानी तोड़ी
न्यास के स्वर – ग
आरोह – सा, रे॒ ग॒, मं प, ध॒, नि सां।
अवरोह – सां नि ध॒ प, मं ग॒, रे॒, सा।।

पकड़ – ध़ नि़ सा, रे़ ग़, रे़, सा, मं, ग़, रे़ ग़, रे़ सा।

3.9.2 मुख्य स्वर संगतियाँ :–

1. ग़, रे़, सा, नि़, सा रे़ ग़, मं ग़, रे़ ग़ रे़ सा।
2. नि़, सा रे़ ग़, रे़ ग़ मं ग़, प, मं ध़ प , मं प ध़, मं ग़, ध़, मं ग़, रे़ सा।
3. सा रे़ ग़, रे़ ग़, मं ग़, ध़ मं ग़, नि ध़, प, मं प ध़, मं ग़, रें नि ध़ नि ध़, प, मं प ध़ मं प, मं ग़, ध़ मं ग़, ध़ नि़ सा रे़ ग़, मं ग़, रे़ ग़ रे़ सा।
4. नि़ सा ग़ मं प, ग़ मं प, ध़ प, नि ध़ प, सां, नि ध़ प, मं प ध़, नि ध़ प, सा रे़ ग़, मं प मं ग़ रे़ सा।
5. मं ग़, मं ध़ सां, रें गं रें सां, नि सां रें़, नि ध़, नि ध़ प, गं मं॑ गं, रें गं रें सां।

3.9.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचाना :–

1. सा रे़ ग़, रे़ ग़ रे़ सा, ध़ नि़ सा रे़ ग़।
2. मं प ध़, मं ग़ , ध़ मं ग़, रे़ ग़ रे़ सा।।
3. नि़ सा रे़, नि़ ध़, नि़ ध़, मं ध़ नि़ सा रे़ ग़।
4. मं ग़, मं ध़ नि सां, ध़ नि सां रें गं, रें गं रें सां।
5. सां रें गं, रें गं मं॑ गं, पं, रें गं रें सां।

3.3 राग गांधारी

3.3.1 परिचय :–

''रिमौ पनी धपौ सश्च निधौ पमौ पगौ रिसौ।
गांधारो रियः प्राक्तो धैवतांशसमन्वितः''।। (अभिनवरागमंजर्याम्)

''गधनि उतरी दोनों ऋृषभ, आरोहन गा त्याग।
ग ध वादी संवादी ते, सुन गांधारी राग''।

गांधारी राग आसावरी थाट से उत्पन्न राग है। इसके आरोह में गंधार स्वर वर्ज्य है तथा अवरोह में सातों स्वरों का प्रयोग होता है इसलिए इस राग की जाति षाडव–सम्पूर्ण है। इस राग का वादी धैवत तथा सम्वादी गंधार है। इसमें गंधार, धैवत स्वर कोमल तथा निषाद और ऋृषभ शुद्ध व कोमल दोनों प्रकार के लगते है। इसका गायन समय दिन का दूसरा प्रहर है। इसका साधारण चलन आासावरी अंग का हे। 'म ग़ रे सा म म प' यह स्वर–विन्यास इस राग का स्वतंत्र अंग है। इस राग के आरोह में शुद्ध और अवरोह में कोमल ऋषभ प्रयोग किया जाता है। रे, ग, ध, नि स्वर कोमल तथा आरोह में शुद्ध रे का प्रयोग होने के कारण मन में यह शंका उठ सकती है कि इसे भैरवी थाट के अन्तर्गत क्यों न रक्खा जाय। इसकी चलन आसावरी प्रधान होने के कारण इसे आसावरी थाट में रक्खा गया है। इस राग का आरोह जौनपुरी तथा अवरोह विलासखानी तोड़ी की तरह है। स्वर की दृष्टि से अवरोह भैरवी राग का भी हो सकता है, किन्तु ऐसा मानना उचित नहीं, क्योंकि यह गम्भीर प्रकृति का राग है।

यह उत्तरांग प्रधान राग है। इसका चलन जौनपुरी की तरह मध्य सप्तक के उत्तंराग में तथा तार सप्तक में अधिक होता है, किन्तु पूर्वांग में दोनों ऋृषभ के प्रयोग से यह राग स्पष्ट होता है और समप्रकृतिक रागों से अलग हो जाता है। इसमें 'सा ध़' की संगति बहुत दिखाई देती है। जब 'सा' से ध पर जाते हैं तो निषाद की मींण युक्त कण लेते हैं जैसे – सा ध़नि़ ध़नि़ प । 'सा ध़' और दोनों ऋृषभों का प्रयोग गांधारी राग को आसावरी और जौनपुरी से अलग करता है।

समप्रकृतिक राग– आसावरी और जौनपुरी
न्यास के स्वर – ग, प और ध
आरोह – सा रे म प ध नि सां।
अवरोह – सां नि ध प म ग रे सा।।
पकड़ – सा ध ध प, ध म प ग, रे ऽ रे सा।

3.3.2 मुख्य स्वर संगतियाँ :–

1. सा सा ध$^{नि}$ ध$^{नि}$, प, ध ग^{म}, रे ^{ग}म, प, प, ध$^{नि}$ ध$^{नि}$ प, मप, ध ध, सां^{ध}, नि सा, रे रे रे, सा ध, प ध म प, ग^{म} रे^{ग} सा ।

2. सा, रे म प ग, रे म प ग, रे रे सा , सा प ग, रे म प, रे म प ध प ग, ध$^{नि}$ ध$^{नि}$ प, ध म प ग , सा रे म प ध म प ग, रे^{ग} रे^{ग} सा।

3. सा, ध, ध नि सा, सा रे म प, ध, प, नि ध प, ध म प, नि ध प, रें नि ध प, नि ध प म ग रे, रे सा।

4. सां ध ध, प, नि ध, प, ग रे म प, गं रें सां, रें नि ध, प, मप सां, नि ध, पधमप, ग, रे रे, सा।

5. मप, धनिसां, नि सां, ध, सां, रें गं, रें सां, रें नि ध प , मपनिधप, मपध, रें सां, रें नि ध प, नि सां, नि ध प, धमप, नि ध प।

3.3.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

1. सा रे म प ग, रे रे सा।
2. सा रे म प ध म प ग, रे रे सा।
3. सां ध ध प, नि ध प, ग, रे म प।
4. नि ध प, ध म, रे म प ग, रे रे सा।
5. सा ध ध नि सा, सा रे म प, ध प।
6. म प ग, रे म प, नि ध प।

3.10 राग गुजरी तोड़ी

3.10.1 परिचय :–

आरोही–अवरोह में पंचम सुर को छोडि।
ध–रि वादी संवादि ते कहत गुजरी तोडि'।।(राग चन्द्रिकासार – 29)

प्रस्तुत राग का गुजरी नाम अत्याधिक प्राचीन है। संगीत के प्रमुख ग्रन्थों में इसके बहुत से प्रकार वर्णित हैं जैसे– दक्षिणी गुजरी, उत्तरी गुजरी, सौराष्ट्र–गुजरी, महाराष्ट्र गुजरी इत्यादि। कुछ विद्वान इस राग का सम्बन्ध गुजरात तथा गुजरी प्रान्त से मानते हैं परन्तु उनकी इस धारणा को कोई तर्कसंगत आधार प्राप्त नहीं है। प्राचीन गुजरी और आज के गुजरी के स्वरूप में पर्याप्त अन्तर है। प्राचीन गुजरी भैरव थाट जन्य राग था परन्तु वर्तमान समय का प्रचलित गुजरी तोड़ी, तोड़ी थाट जन्य राग माना जाता है अतः स्वरूप में भिन्नता होना स्वाभाविक ही है। गुजरी के

स्थान में कुछ आधुनिक विद्वान इसे गूजरी के नाम से भी सम्बोधित करते हैं। इसमें रे, ग ध कोमल मध्यम तीव्र (म") एवं निषाद शुद्ध लगता है इस राग में पंचम स्वर वर्जित है। इसलिए इस राग की जाति षाडव–षाडव है। इसका गायन समय दिन का दूसरा प्रहर है। वादी स्वर धैवत तथा सम्वादी गंधार है। कुछ विद्वान इस राग में ऋृषभ को सम्वादी मानते है वस्तुतः ऐसा मानना अनुचित भी नहीं है परन्तु तोड़ी के प्रकार में धैवत स्वर बहुत अधिक महत्व का स्वर है।

गुजरी तोड़ी में ऋृषभ दीर्घ तथा न्यास बहुत्व का स्वर है। परन्तु जिस प्रकार उत्तरांग में गुजरी का प्राण धैवत है उसी प्रकार पूर्वांग में गुजरी का प्राण गंधार है। इस राग का चलन मध्य तथा तार सप्तक में अधिक होता है। साथ ही धैवत से प्रारम्भ करने से राग को पहचानने में सुविधा होती है। प्राचीन काल में इस राग का ग्रह स्वर धैवत माना जाता था। रे ग ध इस राग में न्यास के स्वरी हैं।

समप्रकृतिक राग – मियाँ की तोड़ी
न्यास के स्वर – ध, ग।
आरोह – सा रे ग मं, ध नि सां।
अवरोह – सां नि ध, मं ग रे सा।।
पकड़ – ध मं ग, रे ग रे सा।

3.10.2 मुख्य स्वर संगतियाँ :–

1. ग रे सा, नि़ सा, ध़ नि़ सा रे ग मं ग, ध म ग, रे ग मं ग, रे ग रे सा।
2. मं ग, रे ग रे, मं ग, ध मं ग, रे ग रे सा, नि ध मं ग, रे ग रे सा।
3. ध मं ग, नि ध मं ग, रे ग रे सा, नि नि ध नि ध, मं ग म सा।
4. सां रें गं रें सां, नि ध मं ग, ग रे सा, मं मं ग मं ग रे सा, ध ध मं ध मं ग रे ग रे सा।
5. मं ग मं ध, रें सां, नि ध मं ध मं ग, रे ग रे सा।

उपरोक्त स्वर समूह से राग स्पष्ट हो रहा है किन स्वरों पर न्यास हो रहा है इससे राग गुजरी तोड़ी का स्वरूप स्पष्ट हो रहा है।

3.10.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

1. ध़ नि़ सा रे ग, मं ध मं ग।
2. सा, रे नि़ ध़, मं ध़ नि़ सा।
3. मं ध नि ध मं ग, रे ग रे सा।
4. नि नि सां रें नि ध मं ग, ग रे सा।
5. मं ध नि सां, ध नि सां रें गं, रें गं रें सां।

3.13 राग मियाँ मल्हार

3.13.1 परिचय :–

मियाँमल्हार इति विदितो यस्तु कर्णाटमिश्रः।
षड्जो वादी रूचिर इह संवादिना पंचमेन।।
गांधारस्य स्फुटविलसदांदोलनं निद्वयं च।
प्रच्छन्नो धो विलसति सदा मध्यमाद्रौ प्रषातः।। कल्पद्रुमांकरे

'गा कोमल संवाद म–स, उतरत धैवत टार
दोउ निषाद के रूप ले, कहि मियाँमल्हार'

मियाँमल्हार राग काफी थाट जन्य राग है। कुछ विद्वान इसका वादी सा तथा सम्वादी 'प' मानते हैं तो कोई इसका वादी 'म' तथा सम्वादी सा मानते हैं। परन्तु शास्त्रोक्तानुसार दूसरा मत अधिक प्रचलित है। इसके आरोह में सात तथा अवरोह में धैवत वर्जित होने के कारण इसकी जाति सम्पूर्ण–षाडव मानी जाती है। इस राग को वर्षा ऋतु में अधिक गाया बजााया जाता है इसलिए इस राग को मौसमी राग की संज्ञा दी जाती है। शास्त्र नियमानुसार इस राग का गायन समय मध्यरात्रि माना जाता है। कानड़ा एवं मल्हार इन दो रागों का इसमें सुन्दर सामंजस्य है। इस राग में – रे म रे सा, नि़ प़, म़ प़, नि़ ध़, नि़ सा, म रे प, नि़ ध, नि सां, प ग़ म रे सा – यह भाग बार–बार प्रयोग किया जाता है और इन्हीं स्वर समुदायों द्वारा इस राग की पहचान होती है। इस राग में कोमल गंधार तथा दोनों निषादों (कोमल एवं शुद्ध) का प्रयोग किया जाता है कभी–कभी दोनों निषादों का प्रयोग भी गायक वादक एक के बाद एक करके भी राग हाँनि नहीं होने देते हैं और जो सुनने में भी सुन्दर प्रतीत होता है। इसका आलाप जब बिलम्बित लय में करके जब उसका विस्तार मन्द्र स्थान पर होता है तब यह सुन्दर एवं कर्ण प्रिय लगता है।

इस राग का आलाप मन्द्र एवं मध्य सप्तक में अधिक किया जाता है। गौड़मल्हार में जिस प्रकार सां, ध प, ध सां, ध प – यह प्रयोग क्षम्य है और कुछ अंशों में राग वाचक भी है। उस प्रकार का प्रयोग इस राग में नहीं है। यह राग सर्वप्रथम मियाँ तानसेन द्वारा प्रचलित हुआ और अकबर बादशाह ने इसे बहुत पसन्द किया ऐसा मान्य है। यह अत्यधिक मधुर एवं लोक प्रिय राग है।

समप्रकृतिक राग – बहार
न्यास के स्वर – ग़, प, शुद्ध नि
आरोह – रे म रे सा, म रे, प, नि़ ध, नि सां।
अवरोह – सां नि़ प, म प , ग़ म, रे सा।।
पकड़ – रे म रे सा, नि़ प़, म़ प़, नि़ ध़, नि़ सा, प, ग़ म रे सा।

3.13.2 मुख्य स्वर संगतियाँ :–

1. सा रे सा, नि़ ध़ नि़ ध़, नि़ सा, नि़ सा रे सा नि़ प़, म़ प़ नि़ ध़ नि़ सा, नि़ सा रे म रे सा।
2. नि़ सा रे, सा रे प ग़, म रे सा, नि़ ध़ नि़ सा रे सा, प ग़, म रे सा।
3. म रे प, म प, नि़ ध, नि़ ध, नि़ म प, नि़ नि़ प म प, ग़, म रे सा ध़ नि़ म़ प़, नि़ ध़, सा नि़ ध़, सा नि़, रे सा।
4. म प, नि़ ध, नि़ ध, नि सां, सां रें सां, ध नि़ म प, नि़ ध नि सां।
5. नि सां रें मं रें सां, नि़ प, नि़ नि़ प म, प ध नि सां नि़ प ग़, म रे सा नि़ ध़ नि़ ध़ नि़ सा रे सा।

3.13.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

1. सा, नि़ ध़, नि़ ध़ नि़ सा, रे सा।
2. म रे प, म प नि़ ध नि़ म प, ग़ म रे सा।
3. नि़ सा रे म रे सा, नि़ प़, नि़ ध़ नि़ सा।
4. म प नि़ ध, नि़ ध, नि सां, ध नि़ म प।
5. नि सां रें, सां रें पं ग़ं, मं रें सां, नि़ ध नि सां।

3.12 राग दरबारी कान्हड़ा

3.12.1 परिचय :–

मृदु गमधनि तीखो रिखब अवरोहत ध न लाग।
रि–प वादी–संवादी तें कहत कानड़ा राग।। चन्द्रिकासार

मृदु गनी धमौ रिस्तु तीव्रोंडशः पसहायकः।
गांधारांदोलन यत्र कर्णाटः सा निशि स्मृतः।। चन्द्रिकायाम

इस राग की उत्पत्ति आसावरी थाट से मानी गई है। इस राग का वादी स्वर ऋृषभ तथा संम्वादी पंचम है। इस राग के आरोह में सातों स्वर एवं अवरोह में छ' स्वरों का प्रयोग होने के कारण इसकी जाति सम्पूर्ण–षाडव है। यह गम्भीर प्रकृति का राग है। इसका गायन समय मध्य रात्रि है। इस राग का मुख्य चलन मन्द्र सप्तक तथा मध्य सप्तक में किया जाता है। इस राग के आरोह में गंधार स्वर दुर्बल है। तानों के जलद व सरल रूप में तो कभी–कभी इसको बिल्कुल छोड़ देते हैं। गंधार स्वर में आन्दोलन इस राग में अत्यधिक विचित्रता पैदा करता है। अवरोह में धैवत को वर्ज्य करते हैं। इस राग को मियाँ तानसेन ने प्रचलित करके अकबर बादशाह को प्रसन्न किया ऐसा कहा जाता है। इसमें निषाद और पंचम की संगति बहुत सुन्दर लगती है। यह अत्यधिक मधुर राग है। इस राग में ग ध नि स्वर कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। इस राग के समान अड़ाना राग है। दोनों राग आसावरी थाट से हैं किन्तु अड़ाना में दोनों निषाद प्रयुक्त होते हैं– आरोह में शुद्ध तथा अवरोह में कोमल। अवरोह के स्वर दोनों के एक समान हैं परन्तु अड़ाना उत्तरांग प्रधान राग है तथा इसका कोमल गंधार चढ़ा हुआ है। जबकि दरबारी कान्हडा का गंधार श्रुतियों में उतरा है तथा धैवत में आन्दोलित होता है।

समप्रकृतिक राग – अड़ाना।
न्यास के स्वर – ग, ध, नि।
आरोह – नि़ सा, रे ग़ रे सा, म प, ध़, नि़ सां।
अवरोह – सां, ध़, नि़, प, म प, ग़, म रे, सा।।
पकड़ – ग़, रे रे, सा, ध़, नि़ सा, रे सा।

3.12.2 मुख्य स्वर संगतियाँ :–

1. सा, नि़ सा, रे सा, नि़ सा रे, ध़ नि़ प़, म़ प़ ध़ , नि़ सा, नि़ रे, सा।
2. सा, रे रे सा, नि़ सा रे ध़, नि़ प़, म़ प़ ध़, नि़ सा, ध़ नि़ सा।
3. नि़ सा रे, सा रे, सा ध़, रे सा, सा रे ग़, म रे सा, ध़ नि़ रे सा।
4. म प, ग़, म रे सा, म प ध़, नि़ प, नि़ म प, ग़, म रे सा ध़ नि़ सा।
5. सा नि़ ध़ नि़ सा रे ग़, म रे सा, म प ध़, नि़ प, नि़ नि़ प म प, ग़, म रे सा ध़, नि़ प़, म़ प़ ध़ नि़ सा।
6. म प ध़ नि़ सां, ध़ नि़ रें सां, रें रें सां, नि़ सां रें ध़, नि़ प, म प, ग़, म रे सा, ध़ नि़ सा रे सा।
7. सां रें ग़ं, मं रें सां, नि़ सां रें ध़, नि़ प, सां ध़, नि़ प, म प, ग़ म रे सा, ध़ नि़ सा, रे ग़, म रे सा।।

3.12.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

1. सा, ध़ नि़ सा रे, ग़, म रे सा।
2. म, रेसा ध़ , नि़ , प़, म़ प़ ध़ नि़ सा।

3. म प ध़, नि़ प, नि़ म प ग़, म रे सा।
4. ध़ नि़ सा रे, ग़, म रे सा, म प ध़, नि़ प।
5. सां ध़, नि़ प, म प, ग़ म रे सा।
6. नि़ सा रें, सां रें ग़ं, मं रें सां, ध़ नि़ सां।
7. रें रें सां, नि़ सां रें ध़, नि़ प, म प ध़ नि़ रें सां।

3.12.4 राग दरबारी कान्हडा एवं मियाँ मल्हार की तुलना :–

	राग दरबारी कान्हडा	राग मियाँ मल्हार
1.	यह राग आसावरी थाट से उत्पन्न माना जाता है।	मियाँमल्हार राग काफी थाट जन्य राग है।
2.	वादी स्वर ऋृषभ तथा सम्वादी पंचम है। इसके वादी, सम्वादी पर कोई विवाद नहीं है।	कुछ इसका वादी षड़ज तथा सम्वादी पंचम मानते हैं। कोई मध्यम वादी तथा सम्वादी षड़ज मानते हैं।
3.	इस राग की जाति षाडव–सम्पूर्ण हैं।	इस राग की जाति सम्पूर्ण–षाडव है।
4.	इस राग का गायन समय मध्यरात्रि है।	इस राग को वर्षा ऋृतु में गाया जाता है इसलिए इसे मौसमी राग कहते हैं। शास्त्र नियमानुसार इसका गायन समय मध्यरात्रि है।
5.	यह गम्भीर प्रकृति का राग है।	यह चंचल प्रकृति का राग है।
6.	इसका चलन मन्द्र सप्तक में अधिक होता है।	इस राग का चलन मन्द्र एवं मध्य सप्तक में अधिक होता है।
7.	गंधार स्वर में आन्दोलन इस राग में वैचित्र्यता बढ़ाता है।	कानड़ा एवं मल्हार दो रागों का सामंजस्य है।
8.	दरबारी में ग ध नि स्वर कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध प्रयुक्त होते हैं।	इस राग में ग कोमल तथा दोनों निषाद (कोमल, शुद्ध) प्रयुक्त होते हैं।
9.	इसका समप्रकृतिक राग अड़ाना है।	इसका समप्रकृतिक राग 'बहार' है।
10	न्यास के स्वर – ग ध नि स्वर है।	न्यास के स्वर ग प एवं शुद्ध नि है।
11	इस राग के आरोह में गंधार स्वर दुर्बल है कभी–कभी जलद तानों में इसको बिल्कुल छोड़ देते हैं। स्वर समुदाय– सा, ध़ नि़ प़, म़ प़ ध़ नि़ सा सा रे ग़, म प ध नि़ प, म प ग़ म रे सा, ध़ नि़ सा	इस राग में ऐसा नहीं होता है। स्वर समुदाय– सा नि़ ध़, नि़ ध़, नि़ सा, रे म रे सा म रे प, ग़, म रे सा, नि़ ध़, नि़ सा।
12	दरबारी राग मियाँ तानसेन द्वारा प्रचलित कर अकबर बादशाह को प्रसन्न किया गया।	इस राग को भी मियाँ तानसेन ने प्रचलित किया और अकबर बादशाह को बहुत पसन्द आया।

3.5 राग भीमपलासी

3.5.1 परिचय :–

तीखे रिध कोमल गमनि, आरोहत रिधहीन।
स–म संवादि वादिते भीमपलासी चीन्ह।। (रागचचिद्रकासार)

मनी तु कोमलौ गोऽपि समौ संवादिवादिनौ।
आरोहे न रिधौ साऽपराह्यो भीमपलाशिका।। (रागचन्द्रिकायाम)

भीमपलासी राग की उत्पत्ति काफी थाट से मानी गई है। इसके आरोह में ऋृषभ एवं धैवत स्वर वर्जित है तथा अवरोह में सातों स्वरों का प्रयोग होता है इसलिए इस राग की जाति औडव–सम्पूर्ण है। इसमें गंधार तथा निषाद स्वर कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध प्रयोग होते हैं। वादी स्वर मध्यम तथा सम्वादी षड़ज है। इस राग का गायन समय दिन का तीसरा प्रहर है। इस राग के आरोह में ऋृषभ व धैवत का अभाव एवं षड़ज, मध्यम, पंचम स्वरों का प्राबल्य दिन के तीसरे प्रहर के राग की झलक देता है, ऐसा विद्वानों का मानना है। साँरग के प्रकारों में ऋृषभ का सर्वत्र गौरव होने के बाद इस स्वर का अदृश्य होना योग्य ही होता है। भीमपलासी का समप्रकृति राग 'धनाश्री' माना जाता है जो काफी थाट से ही माना जाता है। इस राग का वादी स्वर पंचम मानते हैं। इस प्रकार इन दोनों रागों में केवल वादी स्वर का अन्तर होने के कारण, एक दूसरे से मिल जाने की सम्भावना रहती है। तथापि 'प ग' एवं 'म ग' इन स्वर–संगतियों का कुशलता से प्रयोग करने पर 'धनाश्री' तथा भीमपलासी' का अलग दिखाई देना कठिन नहीं होता है। सम्भवतः इन अड़चनों के कारण काफी–मेल से उत्पन्न धनाश्री गाने का व्यवहार कम पया जाता है। यह अत्यधिक मधुर एवं लोकप्रिय राग है।

समप्रकृति राग – धनाश्री
न्यास के स्वर – सा, म, प।
आरोह – नि़ सा ग़ म, प, नि़ सां।
अवरोह – सां नि़ ध प म, ग़ रे सा।
पकड़ – नि़ सा म, म ग़, प म, ग़, म ग़ रे सा।

3.5.2 मुख्य स्वर संगतियाँ :–

1. नि़ सा, नि़ ध़ प़, नि़ ध़ प़, प़ नि़ सा, ग़ रे सा, म़ प़ नि़ सा, रे नि़ सा, ग़ रे सा।
2. नि़ सा, म, म, प ग़, म ग़ रे सा, नि़ सा, ग़ रे सा, नि़ सा ग़ म प, ग़, म ग़ रे सा ।
3. सा, नि़ नि़ सा, म ग़, म प म, ध प, म प ग़, म प सां नि़ ध प, ग़, म ग़ रे सा।
4. नि़ सा, म ग़ रे सा, नि़ सा ग़ म प ग़ म ग़ रे सा, नि़ सा ग़ म प नि़ ध प म प ग़ म ग़ रे सा।
5. ग़ म प नि़, प नि़ सां, नि़ सां गं रें सां, नि़ सां मं गं रें सां, सां नि़ ध प, म प ग़ म प, नि़ ध प, ग़ म प, ग़, म ग़ रे सा, प नि़ सा, ग़ रे सा।

3.5.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

1. नि़ सा ग़ रे सा, प़ नि़ सा, ग़ म प ग़, म ग़ रे सा।
2. ग़ म प नि़ ध प, ध म प ग़, म ग़ रे सा।
3. प म ग़ म प नि़, प नि़ सां, नि़ सां गं रें सा।
4. नि़ सा ग़ म प, नि़, सां नि़ ध प, म प, ग़ म, ग़ रे सा।
5. प प, म प, ग़ म, प प, नि़ नि़, ध प, म प, ग़ म प।

3.15 राग मेघमल्हार

3.15.1 परिचय :–

सुध मलार के मेल में दोउ निखाद लगात।
सम वादी–संवादी तें मेघ मलार कहात।। **रागचन्द्रिकासार**

मल्हार एवं मेघः किंचिन्मृदुनिप्रवेशतो भवति।
ऋृषभस्यांदोलनमत्यत्र भवेद्भेदधीजनन हेतुः।। **रागकल्पद्रुमांकरे**

मेघमल्हार काफी थाट से उत्पन्न होता है। इसमें राग में गंधार एवं धैवत स्वर वर्ज्य हैं। इसलिए इस राग की जाति औडव–औडव है। इस राग का वादी षड़ज तथा सम्वादी पंचम है। कुछ लोग इस राग का संवादी मध्यम मानते हैं। मरेप यह मल्हार राग का स्वर–विन्यास इसमें ही प्रमुख रीति से आता है। ऋृषभ पर होने वाले आन्दोलन इस राग को पहचानने में सहायता देते हैं। ये आन्दोलन ऋृषभ पर मध्यम का कण लगाकर तीन चार बार एक से ही गाने पड़ते हैं। जेसे रे^{म} रे^{म} रे^{म} । मध्यम पर अनेक बार मुकाम होता है और उसमें सारंग अलग होता है। यह मौसमी राग है यह वर्षा ऋतु में गाया जाता है धैवत लगने वाली इस राग में कुछ चीजें उपलब्ध हैं। यह बहुत मधुर राग है। इस राग में सारंग की छाया दिखाई देती है। 'मेघ' में दोनों निषाद लेने का चलन दिखाई देता है। यह राग मल्हार का एक प्रकार है। इसके ऋषभ पर हमेशा मध्यम का कण लगाया जाता है। इस राग के विषय में किवदन्ती है कि जब तानसेन ने दीपक राग गाया तो उनके शरीर की प्रचण्ड गर्मी को इस राग द्वारा शांत किया गया था। कहा जाता है कि उनकी बेटी ने मेघ राग गाकर उस अग्नि को शांत किया था। इस राग में मध्यम खूब चमकता है।

समप्रकृतिक राग – मधुमाद सारंग।
आरोह – सा, म रे म प, नि, नि सां।
अवरोह – सां, नि प, म रे, म नि रे सा।।
पकड़ – रे म, रे सा, नि़ प़ नि़ सा, रे रे म रे सा।

3.15.2 मुख्य स्वर संगतियाँ :–

1. सा नि़ सा, नि़ सा, रे^{म} म रे, सा, नि़ सा, प^{म}, म$^{रे}$ रे, सा, नि़ नि़ प, म प, म रे, सा।
2. सा, रे सा, नि़^{प} नि़^{ध} प़, म़ प़, सा, रे, म$^{रे}$ रे, नि़ प, सा, नि़ प, म रे सा।
3. सा, रे रे, प म रे, नि़ नि़, म प, सां, नि़ म, म रे, रे^{म} रे^{म} , म रे, सा।
4. रेरे, म रे सा, नि़^{प} प़, सा, नि़ सा, रे^{म} , प म रे, सा, नि़ नि़ प म रे, प म रे, म रे सा।
5. म़ प़, नि़ सा, प़ नि़ सा, रे, रे, प, म रे, नि़ सां, नि़^{प} प, म नि़^{प} प, म रे, सां, नि़ प म रे , प, म रे, सा।
6. सां रें सां, नि़ सां रें मं रें सा, नि़ नि़ प, रें रें मं रें सां, रें सां, नि़ नि़ प म प, सां नि़ प म रे, सा।

3.15.3 स्वर समूह द्वारा राग पहचानना :–

1. नि़ सा रे म रे, प म रे म रे, नि़ रे सा।
2. प नि़ प म, रे म रे, नि़ सा।
3. प़ नि़ म़ प, नि़ सा, रे, रे प म रे, नि़ सा।
4. म प नि़ सां, रें नि़ सां, नि़ प म रे, प, रे रे सा।

5. नि सां रें मं रें, नि रें सां, नि म प, रे, प रे, नि रे सा।
6. रें रें मं रें सां, सां नि प म, रे, सां।

अभ्यास प्रश्न

क. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. गांधारी राग किस थाट का राग है?
2. सा रे म प ग, रे रे सा स्वर किस राग के हैं?
3. भीमपलासी राग का वादी स्वर क्या है?
4. पाठ्यक्रम के तोड़ी अंग के रागों के नाम लिखिए?
5. सा रे ग म ध नि सां यह किस राग का आरोह है?
6. मियाँमल्हार राग का वादी तथा सम्वादी स्वर बताइये?
7. मियाँ मल्हार राग सर्वप्रथम किसके द्वारा प्रचलित हुआ?
8. राग दरबारी कान्हड़ा का मुख्य चलन किस सप्तक में होता है?
9. राग मेघमल्हार में कौन से स्वर वर्जित है?

ख. निम्न स्वर–समुदाय द्वारा राग पहचानिये :–

10. म रे प, म प नि ध नि ध, नि सां।
11. नि सा रे म प नि प म, रे म रे, नि रे सा।
12. प़ नि सा, ग रे सा, ग म प नि ध प।

3.16 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप पाठ्यक्रम के रागों का पूर्ण परिचय प्राप्त कर चुके हैं। राग में प्रयुक्त होने वाले स्वर, राग का वादी, सम्वादी, राग के पकड़ स्वर एवं राग के मुख्य स्वर समुदाय जिनके द्वारा राग को एक दूसरे से अलग करके पहचाना जा सकता है इन सबका अध्ययन राग के परिचय में कराया गया है। इस इकाई में आपने अंगों के आधार पर तथा राग के चलन के आधार पर समान प्रकार के रागों का तुलनात्मक अध्ययन भी किया है जिससे आप एक राग से दूसरे राग को पृथक कर उसके सैद्धान्तिक स्वरूप को भी समझेंगे और इसके साथ रागों को क्रियात्मक रूप में सफलता पूर्वक कर पाएँगें। स्वर समूहों द्वारा राग पहचानना का अध्ययन भी आपने इस इकाई में किया है जिससे आप स्वर समूह को पढ़कर तथा सुनकर रागों को पहचान सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप पाठ्यक्रम के रागों को पूर्ण रूप से समझेंगे एवं उसके सैद्धान्तिक तथा क्रियात्मक पक्ष को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत कर सकने में सक्षम होंगे।

3.17 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. आसावरी थाट
2. राग गांधारी
3. मध्यम
4. मियाँ की तोड़ी, विलासखानी तोड़ी, गुजरी तोड़ा
5. गुर्जरी तोड़ी
6. वादी– षडज, सम्वादी– पंचम
7. मियाँ तानसेन
8. मन्द्र सप्तक में।
9. ग, ध स्वर

ख. निम्न स्वर–समुदाय द्वारा राग पहचानिये :–

10. मियाँ मल्हार
11. मेघमल्हार
12. भीमपलासी

3.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भातखण्डे, पं0 विष्णुनारायण, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग – 1, 2, 3, 4, 5 व 6, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. बसंत, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
3. झा, पं0 रामाश्रय 'रामरँग', अभिनव गीतांजली।

3.19 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम के किन्हीं चार रागों का पूर्ण परिचय प्रस्तुत कीजिए।
2. राग गांधारी तथा कोमल रिषभ आसावरी की तुलना कीजिए।
3. अपने पाठ्यक्रम के पूर्वी थाट के रागों का पूर्ण परिचय तथा उसकी मुख्य स्वर संगतियाँ लिखिए।

इकाई 4 – गायन एवं तंत्रकारी पद्धति ; वादन में आलाप, जोड़ आलाप, जोड़ झाला एवं झाला ; मिज़राब के बोलों के विभिन्न प्रकार के छन्दों का अध्ययन।

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 गायन एवं तंत्रकारी पद्धति
4.4 वादन में आलाप, जोड़ आलाप, जोड़ झाला एवं झाला
4.5 मिज़राब के बोलों के विभिन्न प्रकार के छन्दों का अध्ययन
4.6 सारांश
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रदर्शन कला–संगीत में स्नातकोत्तर, तृतीय सेमेस्टर (एम0पी0ए0एम0आई0–602) पाठ्यक्रम की चौथी इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में जातिगायन, राग गायन एवं राग के लक्षणों के बारे में जान चुके हैं। आप सारणा चतुष्टयी को भी विस्तार से समझ चुके हैं। आप पाठ्यक्रम के रागों से भी भलीं–भांति परिचित हो चुके हैं।

इस इकाई में गायन एवं तंत्रकारी पद्धति के विषय में बताया गया है। इस इकाई में वादन में बजने वाले आलाप, जोड़ आलाप, जोड़ झाला एवं झाला को समझाया गया है। इसमें मिज़राब के बोलों के विभिन्न प्रकार के छन्दों का अध्ययन भी प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप गायन एवं तंत्रकारी पद्धति के बारे में जान सकेंगे। आप वादन में बजने वाले आलाप, जोड़ आलाप, जोड़ झाला, झाला आदि को भी जान सकेंगे। आप मिज़राब के बोलों के विभिन्न प्रकार के छन्दों को भी समझ सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

1. गायन एवं तंत्रकारी पद्धति के बारे में जान सकेंगे।
2. आलाप, जोड़ आलाप, जोड़ झाला, झाला आदि को जान सकेंगे।
3. मिज़राब के बोलों के विभिन्न प्रकार के छन्दों को समझ सकेंगे।

4.3 गायन एवं तंत्रकारी पद्धति

विद्यार्थियों के संज्ञान के लिए यह बात जानना अति आवश्यक है कि प्राचीन काल में वादन का अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था और वादन हमेशा गायन का अनुकरण ही करता था, अर्थात गायन की संगति के लिए ही वादन का प्रयोग होता था। वादक गायक का अनुसरण करते हुए वाद्य पर भी वही धुन बजाते थे। धीरे–धीरे वाद्यों का स्वतन्त्र वादन प्रारम्भ हुआ परन्तु वादक अभी भी गायन का अुनसरण करते हुए बंदिश गीत आदि का ही वादन किया करते थे। यही पद्धति आगे चलकर गायकी अंग का वादन कहलायी। तत्पश्चात वाद्यों पर बजाने के लिए गतकारों या तंत्रकारी पद्धति का विकास हुआ। वैदिक काल में गायन के साथ वीणा वादन होता था। प्राचीन काल में सभी प्रकार के तत् वाद्यों के लिए वीणा संज्ञा प्रचलित थी और वीणा वादन हमेशा गायन के अनुकरण में ही होता था। आज वादन की दो पद्धतियाँ प्रचार में है जो निम्नलिखित है :–

1. गायकी अंग – प्रचलित तत् वद्यों में सितार त्रितंत्री वीणा का ही विकसित रुप है। अपने विकास के प्रारम्भिक दिनों में सितार का प्रयोग गान के लिए ही होता था। 18वीं शाताब्दी में सेनिया घराने के कुछ उस्तादों ने अपने खानदान के बाहर के लोगों को शिक्षा देने के लिए अन्य वाद्यों को भी अपनाया। इससे सितार और सुरबहार को बढ़ावा मिला। वीणा का आलाप अंग सुरबहार और गीत अंग सितार पर बजने लगा। सिखाने वाले उस्ताद, गायक होने को कारण गायकी को ही प्रमुख स्थान देते थे तथा उन्होंने वादन में भी इसी अंग को स्थान दिया। **हमारे** संगीत की प्राचीन शैली ध्रुवपद में गायन के अभ्यासपूर्ण प्रत्येक स्वर की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता रहा है। स्वर को यथोचित स्थान पर लगाना ही परमावश्यक होता है। वादन में भी उसी तरह स्वर का महत्व है। चूंकि हमारे कण्ठ स्थिति स्वर–यंत्र प्रकृति प्रदत्त होता है, उसका प्रयोग भी आघात जनित है। अर्थात् कण्ठ से जो स्वर उत्पन्न होता है वह हमारे शारीरिक प्रयास से ही होता है। वादन में हम उसे अघात, मिजराब या अन्य प्रकार की व्यवस्था, से उत्पन्न करते हैं इसलिये यदि कहा जाय कि कण्ठ स्वर या गायन का ही अनुसरण हम वादन में करते हैं तो यह असत्य न होगा। ध्रुपद में वीणा व अन्य वाद्यों की संगति में यही किया जाता रहा है। गायन की विशेषता को ही वादन में अवतरित करना ही गायकी है। किसी भी वाद्य में वादन के समय वादक गायन की महत्त्वपूर्ण स्वर–संगतियों का ही अनुसरण करता है जो उसकी सूझ–बूझ व अभ्यास तथा चिंतन पर आधारित होता है। मिज़राब के आघात पर ही व मधुरता व आदत्त, जिगर, हिसाब की पूर्णता को प्रस्तुत करता है। एकल सितार वादन या अन्य वाद्य के वादन में उक्त तथ्यों का होना आवश्यक है।

कंठ संगीत को सर्वोपरि स्थान देते हुए वादकों ने भी गायन की परम्परा का निर्वहन किया। या यूँ कहियें कि जितने भी प्रसिद्ध वादक हुए वे सभी गायन में भी पूर्ण पारंगत होने के कारण गायन का अनुसरण ही वाद्य पर करते थे। इसी के चलते गायकी अंग से वादन का विकास हुआ।

उ0 विलायत खाँ व उनके शिष्य परम्परा में गायकी अंग का सितार ही बजाया जाता है।

2. गतकारी या तंत्रकारी अंग – गायकी अंग को पूर्ण रुप से सितार व अन्य वाद्यों पर बजाना संतोषप्रद सिद्ध न हो सका और सेनिया घराने ने वादन की नई शैली 'गत' का आविष्कार किया। गत की बंदिश मूलतः गान की शैलियों से प्रभावित थी, किन्तु मिज़राब के विशेष प्रयोगों के कारण गत की रचना गान से भिन्नतः प्रयोग होने लगी। तंत्र के लिए उपयुक्त गत शैली का निर्माण सेनी

घराने के उस्तादों को देते हैं। गतों के निर्माणकर्त्ताओं में निहाल पुत्र अमीर खां एवं मसीत खां के नाम से क्रमशः मसीतखानी एवं अमीरखानी का प्रचलन हुआ। इनके शिष्य बरकत उल्ला खां, बहादुर खां एवं गुलाम रजा खां सेनी घराने के थे, जिन के नाम पर रजाखानी गत का प्रचार हुआ। सितार व अन्य तत् वाद्यो में दो प्रकार की गतों का प्रचलन शुरू हुआ, जिन्हें हम वादन शैली या बाज़ भी कह सकते हैं। इस प्रकार दो प्रकार की गतों का विकास हुआ–मसीतखानी और रज़ाखानी गत।

हर वाद्य का अपना एक चरित्र होता है। चरित्र से तात्पर्य है उस वाद्य की बनावट, गूँज (आस), आघात की मात्रा तथा टोनल क्वालिटी (स्वर की यथोचित मधुर ध्वनि) का अध्ययन कर तंत्र में प्रयोग करने की दृष्टि से 'गतकारी' शब्द का प्रचलन हुआ। इस शैली में उन सभी बातों का ध्यान रखा जाता है जो हमारी ध्रुवपद शैली में निहित है। आज भी वादन में विस्तृत आलाप, लयबद्ध आलाप, द्रुत लय में आलाप प्रस्तुत किया जाता है, तत्पश्चात् गतें बजाई जाती है। गायन की शब्द रचना (बन्दिशों) को हू–ब–हूँ अर्थात् पूर्णतः वादन में प्रस्तुत करता है। संतोषजनक न होने पर विद्वानों ने राग व ताल में बंधी हुई मिज़राब के आघातों को पूरी तरह ध्यान देते हुए 'गतों' का प्रचार किया और जो कलान्तर में लोकप्रिय हुई। आज वादक इन्हीं गतों के आधार पर अपने वादन कला का प्रदर्शन करते हैं। गतों में विलम्बित गत के दौरान चैनदारी, लयकारी, विभिन्न कर्णप्रिय छन्दों युक्त स्वर–संगतियों का प्रयोग यथा स्थान किया जाता है। केवल स्वरों द्वारा भावाभिव्यक्ति का प्रयास किया जाता है जो वास्तव में कठिन साधना व चिंतन द्वारा ही सम्भव होता है।

गत की परिभाषा – किसी भी वाद्य यन्त्र पर बजाई जाने वाली राग–ताल बद्ध सुमधुर रचनायें गत कहलाती है। तत् वाद्यों पर बजाई जाने वाली गतों के मुख्य दो प्रकार होते है :–

1. **मसीतखानी गत**
2. **रज़ाखानी गत**

प्रत्येक गत के दो चरण होते हैं। पहले चरण को स्थाई और दूसरे को अंतरा कहते हैं।

1. मसीतखानी गत – तंत्रकारों ने ख्याल शैली के विलम्बित ख्याल के समान ही मसीतखानी गत को विलम्बित के रुप में और रजाखानी गत को ख्याल शैली के द्रुत ख्याल समान द्रुत के रुप में प्रयुक्त करना आरम्भ कर दिया। आज के विद्यार्थी के लिए मसीतखानी का अर्थ विलम्बित गत ही है। यह तीनताल में ही बजायी जाती है। कुछ श्रेष्ठ कलाकारों ने तीनताल के स्थान पर इसे रुपक, झपताल आदि में भी बजाना शुरु किया है। इन तालों में गतें बजाने के लिए ताल के अनुसार मिज़राब के सीधे बोल प्रयुक्त किये जाते हैं। उदाहरणस्वरुप रुपक के लिए ''दारा दारा दा दारा', झपताल के लिए ''दारा दा दारा दारा दा दारा'' आदि। मसीतखानी गत की विशेषता उसकी विलम्बित लय है, जिस पर बीन का स्पष्ट प्रभाव है। जयपुर के मसीत खाँ इसके आविष्कर्ता माने जाते हैं। इस गत की रचना में दिर, दा, दिर दारा दा, दारा, इस क्रम में बोलों की रचना होनी चाहिए।

मसीतखांनी गत में जोड़, आलाप, मीड़, गमक आदि विभिन्न प्रकार की आलंकारिक तानों का विशेषतः प्रदर्शन किया जाता है। मसीत खाँ साहब ने तीनताल में 12 वीं मात्रा से गत का प्रारंभ कर बोलों का इस प्रकार प्रयोग किया – **दिर। दा दिर दा रा। दा दा रा**, पुनः इन्ही बोलों को

दुबारा बजाया जाता है। इस तरह 8 मात्राओं के बोलों को दोबारा बजाने से उस्ताद मसीतखाँ ने इस लोकप्रिय 'गत' को प्रचलित किया। इस गत का प्रयोग प्रायः तत वाद्यो यथा सितार, सरोद आदि में आज भी सुन्दर ढंग से किया जा रहा है। विलम्बित गत का पर्याय मसीतखानी गत से है।

2. रजाखानी गत – रजाखानी गत का अभिप्राय आज द्रुत गत से ही लिया जाता है। इसमें भी तीनताल का ही प्रयोग होता रहा है। मसीतखानी के समान इसमें भी नई तालों का प्रवेश हुआ है। जौनपुर के रजा खाँ मसीत खाँ के शागिर्द थे, जिन्होंने रज़ाखनी गत का आविष्कार किया। इसमें द्रुतलय में गत तथा तोड़े बजाये जाते हैं। रज़ाखानी में गतकारी, चिकारी तथा विभिन्न प्रकार के ''झाला'' का प्रदर्शन किया जाता है। आज सभी कलाकार मसीतखानी और रज़ाखानी गत एक साथ बजाते हैं।

बाज़ – विभिन्न प्रकार से मिज़राब के बोलो को सितार पर कालात्मक ढंग से बजाने को बाज़ कहते हैं। इसका शाब्दिक अर्थ ''सितार बजाने की विशिष्ट शैली'' से होता है। बाज प्रमुखतः दो प्रकार के होते हैं :–

1. दिल्ली बाज़ – इसे पश्चिमी बाज भी कहते हैं। इसमे मसीतखानी गतें बजाई जाती हैं। लय इसमें विलम्बित रखी जाती है, तथा गायकी ढंग से आलाप, मींड, जमजमा, मुर्की आदि गमकों का खूब प्रयोग होता है तथा इसमें विभिन्न लयों की तालों का प्रयोग किया जाता है।

2. गुलाम रज़ा बाज़ अथवा पूर्वी बाज – इसमें द्रुत लय की प्रधानता होती है, जिसें रज़ाखानी कहते हैं। इसमें तैयारी के साथ कलात्मक ढ़ंग से तोड़े व झाले बजाये जाते है और अन्त में लय बहुत तेज कर देते हैं। साधारणतया इसे लखनऊ बाज़ भी कहते हैं, क्योंकि गुलाम रज़ा खॉ, जिन्होनें इस प्रकार की शैली का शुभारम्भ किया था, वे लखनऊ के निवासी थे।

जब बाज़ को व्यापक अर्थ में लेते हैं तो इसके अन्तर्गत सितार बजाने की विविध शैलियॉ और उनके विस्तार आ जाते है। इस प्रकार विविध वादकों की शैली की विविधता से विविध बाज भी बन जाते हैं। केवल लय व बोलों के अन्तर से ही बाज़ का भेद मानना पर्याप्त नहीं है। मसीतखानी व रज़ाखानी गतों को ही अलग–अलग वादक अपने विशिष्ट ढंग से बजा सकते हैं। लेकिन इस प्रकार की विभिन्न शैलियों को घराने के नाम से जाना जाता है।

4.4 वादन में आलाप, जोड़ आलाप, जोड़ झाला एवं झाला

आधुनिक काल में प्रचलित आलाप के विषय में जानने से पूर्व विद्यार्थियों के संज्ञानार्थ प्राचीन आलाप गायन का संक्षिप्त परिचय जानना आवश्यक है। जैसा कि आप जानते हैं कि शास्त्रीय संगीत नियमों की परिधि में बांधा है। प्राचीन काल में यह नियम अधिक कठिन थे जिसमें आलाप एक निश्चित स्वर से प्रारम्भ होगा और निश्चित स्वर पर ही समाप्त होगा। प्राचीन समय में आलाप करने के एक विशेष नियम को स्वरस्थान कहते थे। अंश स्वर पर ही समस्त राग निर्भर

रहता है, उसे ही स्थायी स्वर कहते हैं। स्थायी से चौथा स्वर द्वयर्ध, आठवाँ द्विगुण कहा जाता है और द्विगुण व द्वयर्थ स्वर के बीच के स्वर अर्धस्थित स्वर माने जाते हैं। प्रथम स्वर स्थान में गायक को अपना आलाप द्वयर्ध स्वर के नीचे रखना आवश्यक होता था। न्यास स्थायी स्वर पर किया जाता था। दूसरे स्वर स्थान में द्वयर्ध स्वर भी सम्मिलित कर लिया जाता था और अंत में पुनः स्थायी पर किया जाता था। तीसरे स्थान में आलाप का क्रम अर्धस्थित स्वरों में होता था। परन्तु आलाप की समाप्ति सदैव स्थायी स्वर पर ही की जाती थी। चौथे स्वर स्थान नियम में द्विगुण स्वर तथा उससे ऊपर के स्वर भी सम्मिलित कर लिये जाते थे। परन्तु न्यास पुनः स्थायी स्वर पर ही होता था। इस प्रकार आलाप के चार स्वर स्थान नियम माने जाते थे। तत्पश्चात् रूपकालाप का प्रयोग होने लगा। रूपकालाप में प्रबंध के धातु के समान, आलाप के भिन्न–भिन्न भाग करके गायक को दिखाने पड़ते थे। इन भागों में जो अंतिम स्वर आते थे उन्हें अपन्यास कहा जाता था। रागालाप का उद्देश्य श्रोताओं के सम्मुख राग की व्याख्या करना है कि वह अमुक राग गा रहे हैं। परन्तु रूपकालाप स्वतः ही प्रत्यक्ष प्रबन्ध के समान दिखाई पड़ता था। रूपकालाप के बाद आलप्ति गान की बारी आती है। आविर्भाव और तिरोभाव करते हुए राग को पूर्ण रूप से प्रदर्शित करना ही आलप्ति गान कहलाता है।

आलाप के अन्तर्गत प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द :–

1. **आविर्भाव–तिरोभाव** – किसी राग का विस्तार करते समय उसके बीच में अन्य समप्रकृति रागों के छोटे–छोटे टुकड़े दिखाकर, थोड़ी देर के लिए मुख्य राग को छिपाने का उपक्रम जब किया जाता है, तो उसे तिरोभाव कहते हैं और फिर मुख्य राग स्वरों को कुशलतापूर्वक दिखाकर राग रूप स्पष्ट करने को आविर्भाव कहते हैं।

2. **स्थाय** – छोटे–छोटे स्वर समुदायों को स्थाय कहते हैं, जैसे सा नि ध़ नि सा, म, ग रे सा स्वर समुदाय को आप बागेश्री की पकड़ कह सकते हैं। परन्तु कुछ टुकड़े जैसे – *ग म ध* या *म ध नि ध म* अथवा *सां नि ध नि ध* को पकड़ नहीं वरन् स्थाय कहा जायेगा।

3. **मुखचालन** – रागोचित विविध गमक अलंकारों का प्रयोग करते हुए गायन–वादन करने को मुखचालन कहते हैं।

4. **आक्षिप्तिका** – स्वर, शब्द और ताल की सहायता से जो रचना तैयार होती है उसे प्राचीन पंडित आक्षिप्तिका कहते थे।

5. **विदारी** – गीत तथा आलापों में विभिक्त छोटे–छोटे भागों को विदारी कहते हैं।

वादन में आलाप :–

आलाप की परिभाषा – गायक जब अपना गाना प्रारम्भ करता है तो राग के अनुसार उसके स्वरों को विलम्बित लय में फैलाकर यह दिखाता है कि कौन सा राग गा रहा है। आलाप को स्वर विस्तार भी कहते हैं, जैसे बिलावल का स्वर विस्तार इस प्रकार शुरू करेंगे :–

ग ऽ रे ऽ सा ऽ सा, रे सा ऽ ग ऽ म ग प ऽ म ग, म रे सा ऽ ऽ ऽ इत्यादि।

आधुनिक संगीत में प्राचीन निबद्ध व अनिबद्ध गान के अन्तर्गत अनिबद्ध गान का केवल एक प्रकार प्रचार में है और वह है आलाप। वादन में आलाप गायन की ही भांति स्वर विस्तार हैं जिसमें राग स्वरूप के अनुसार मींड़, गमक, कृन्तन, आंदोलन, घसीट आदि वाद्य की तकनीक द्वारा गायन के समान ही आलाप प्रस्तुत किया जाता है। वादन में आलाप का विस्तार सर्वप्रथम मंद्र सप्तक में तत्पश्चात मंद्र और मध्य में स्थाई की भांति किया जाता है। उसके बाद आलाप का अन्तरा जिसमें मध्य से तार सप्तक में विस्तार किया जाता है। तार सप्तक में राग के स्वरूप के विस्तार के बाद वापस मध्य सप्तक में षड़ज पर आकार आलाप का समापन करते हैं।

आलाप में लय की दृष्टि से आलाप के स्थाई भाग में विलम्बित लय के साथ आलाप चलता है। अंतरे में आलाप में लय बढ़ा दी जाती है और फिर मध्य सप्तक के षड़ज पर समाप्त करते हैं। विलम्बित लय में आलाप के पश्चात् जोड़ आलाप और जोड़ झाला क्रमशः बजाया जाता है।

वादन में जोड़ आलाप – आलाप के बाद और विलम्बित गत से पहले बजाया जाने वाला वह भाग जो लय बद्ध तो होता है किन्तु ताल बद्ध नहीं, जोड़ आलाप कहलाता है। जोड़ का शाब्दिक अर्थ है जोड़ना, अतः वह आलाप में जोड़ा जाने वाला भाग है। इसका प्रारम्भ मंद्र सप्तक में धीमी लय में करते हैं, जिसमें धीरे–धीरे लय बढ़ाते जाते हैं और जोड़ ताने या जोड़ झाला बजाकर इसको समाप्त करते हैं। यह कण, खटका, मींड़ व गमक युक्त होता है। इसके बीच–बीच में सम भी दिखाया जाता है जिसे मुखड़ा कहते हैं।

जोड़ आलाप, गायन के नोम् तोम् के आलाप का ही प्रतिरूप है। राग का सम्पूर्ण चित्रण करके उसमें प्रयुक्त होने वाले विशेष स्वर समूह, विशेष मींड़, विशिष्ट मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी स्वर ध्वनियों आदि का एक अति कौशल पूर्ण तथा मनोरंजक प्रयोग प्रदर्शित करते हैं। जोड़ आलाप में प्रयुक्त विभिन्न छन्द इस प्रकार हैं–

1. दा रा दा रा
2. दा दा रा रा
3. रा दा दा दा
4. दा दा रा, दा दा रा, दा दा रा, दा दा रा, दा रा दा रा

जोड़ आलाप लय बद्ध आलाप हैं जिसमें आठ मात्रा, सोलह मात्रा या अधिक मात्राओं के टुकड़े होते हैं। अर्थात् जोड़ आलाप ताल बद्ध न होते हुए भी ताल में बंधा है। जोड़ आलाप के बाद जोड़ तानें या जोड़ झाला बजाया जाता है।

वादन में जोड़ झाला – जोड़ झाला तत् वाद्यों में प्रयुक्त झाले की भांति ही होता है। इसमें कोई अंतर नहीं होता है। सितार में चिकारी के तारों पर मिज़राब के अपकर्ष प्रहार में जिस 'र' स्वर को विविध प्रकार से निकाल कर बजाते हैं, उसे झाला कहते हैं। झाला बजाते समय बाज के तार पर भी मिजराब का प्रहार होता है, इसी बीच चिकारी भी बजाई जाती है। झाले की सहायता से एक स्वर को लम्बा करना संभव होता है। चिकारी के बोल को रा कहते हैं, जिसका चिन्ह अए झ या ढ है। जोड़ झाले में सामान्य झाले की अपेक्षा छन्दों का प्रयोग अधिक किया जाता है। झाले में लय द्रुत होती है और झाले की समाप्ति मध्य षड़ज पर आलाप के मुखड़े को तीन बार बजा कर करते हैं। संपूर्ण वादन की प्रस्तुति में राग, ताल और गत के अन्तर्गत विभिन्न लयकारियाँ तैयारी के साथ बजाई जाती हैं। सुन्दर कर्णप्रिय तिहाइयॉ, गत परन आदि का समावेश वादन में होता है।

वादन में झाला – स्वर वाद्यों में वादन का समापन झाला द्वारा किया जाता है। झाला के लिए बाज व चिकारी के तार का प्रयोग किया जाता है। बाज के तार पर दा तथा चिकारी के तार पर रा बोल को क्रमशः दा रा रा रा के क्रम में बजाया जाता है। इसे झाला कहा जाता है। झाले में स्वरों की अपेक्षा लय की प्रमुखता रहती है। यह द्रुत लय से शुरू होकर अतिद्रुत लय तक जाता है। झाले में ठोंक, लड़लपेट, मींड़, गमक आदि का प्रयोग भी किया जाता है। झाले के अन्तर्गत दा रा रा रा बोल समूह के अनेक प्रकारों का भी प्रयोग किया जाता है। झाले का समापन एक तिहाई से किया जाता है जो किसी भी मात्रा से शुरू की जा सकती है किन्तु समाप्त सम पर ही होती है।

4.5 मिज़राब के बोलों के विभिन्न प्रकार के छन्दों का अध्ययन

सितार के विभिन्न बोल और उन्हें निकालने की विधि – सितार के तारों पर मिज़राब का प्रहार करने से जो ध्वनि निकलती है, उसे बोल कहते है। मूल रुप से सितार के केवल दो ही बोल होते है, **'दा'** और **'रा'**। इन्ही दो बोलों को तरह–तरह से बजाने और एक दूसरे से मिलाकर निकालने पर अन्य विविध बोल बनते हैं।

दा – जब बाज के तार पर बाहर की ओर से मिज़राब से प्रहार करते हुए अंदर की तरफ लाते हैं, तो 'दा' बोल निकलता है। इस प्रकार प्रहार करने को 'आकर्ष' प्रहार कहते हैं।

रा – जब अंदर से तार पर आघात करते हुए बाहर की ओर मिज़राब वाली उंगली जाती है, तब 'रा' बोल निकलता है। इस प्रकार का प्रहार 'अपकर्ष' प्रहार कहलता है। यह 'आकर्ष' प्रहार की ठीक उल्टी दिशा में किया जाता है।

दिर – इन दोनों बोलों –'दा' और 'रा' को शीघ्रता–पूर्वक एक ही मात्रा में बजाया जाता है, तब 'दिर' बोल बन जाता है।

दार – 'दा' बजाने के बाद 'रा' बजाने का आधा समय यूं ही छोड़ देने पर शेष आधे समय में 'र' बजाने पर 'दार' का बोल निकलता है। इसे इस प्रकार लिखते है– दा, ऽर।

द्रा – दा व रा को मिलाकर अति शीघ्रता से बजाने पर द्रा का बोल निकलता है।

इन्ही बोलों को हेर–फेर कर बजाने से 'दाड़' 'द्रार्दा' आदि बोल निकलते है।

सितार–शास्त्र से सम्बन्धित कुछ अन्य जानकारियाँ :–

ठाठ–सितार की डांड पर विभिन्न स्थानों पर सरगम के विभिन्न स्वर–स्थान पूर्व–निर्धारित है। इन नियत स्थानों पर परदे बांध दिए गए हैं। सितार में बंधे हुए इन्हीं परदों के समुदाय को ठाठ कहते हैं। ठाठ मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं – **(1) अचल ठाठ (2) चल ठाठ।**

(1) अचल ठाठ – अचल शब्द का अर्थ होता है, अपरिवर्तनशील। इसीलिए अचल ठाठ वाला सितार वह होता है, जिसके परदों को खिसकाने की आवश्यकता नहीं होती। उसी रुप में प्रत्येक थाट के राग बजाए जा सकते हैं। इस ठाठ में चौबीस परदे होते हैं, जिनका क्रम इस प्रकार होता है– म़, र्म़, प़, घ़ नि़ नि़ सा रे़ रे ग म म ध ध नि नि सां रें रें गं गं मं। कभी–कभी तार सप्तक का मं स्वर हटा देते है, और सितार में 23 ही परदे बंधे रहते हैं।

(2) चल ठाठ– चल ठाठ के सितार में 16 से 19 परदे होते हैं। इसीलिए आवश्यकतानुसार इसमें परदे खिसकानें की आवश्यकता पड़ती है। सितार पर बाजए जाने वाले रागों के अनुसार परदे खिसकाए जाते हैं। सोलह परदे इस क्रम सें बँधें होते हैं – म़ प़ ध़ नि़ नि़ सा रे ग म म प ध नी सां रें और गं।

17 परदों के ठाठ में तार मं का परदा सम्मिलित किया जाता है। इस भांति विभिन्न संगीतज्ञ और विद्वान अपनी–अपनी रुचि और आवश्यकता के अनुसार परदों की संख्या निश्चित करते हैं तथा उनमें परिवर्तन भी करते हैं।

बोल – सितार के तार पर मिज़राब द्वारा भांति–भांति से जो प्रहार किए जाते हैं, उनसे ही उत्पन्न ध्वनि को सितार–शास्त्र में 'बोल' कहते हैं। बोल निकालने के लिए मुख्य रुप से दो प्रकार से प्रहार किया जाता है :–

(1) आकर्ष प्रहार – दाँहिने हाथ की तर्जनी पर मिज़राब को पहन कर बाज़ के तार पर बाहर से आघात करते हुए जब अन्दर की ओर ले जाते हैं, तब इस क्रिया को आकर्ष प्रहार अथवा सुलट प्रहार कहते हैं। इस प्रक्रिया से निकला बोल 'दा' का होता है।

(2) अपकर्ष प्रहार – जब तर्जनी पर पहने मिज़राब की मदद से बाज के तार पर अन्दर से आघात करते हुए बाहर की ओर जाते हैं, तब 'रा' का बोल निकलता है। अपकर्ष प्रहार की प्रक्रिया आकर्ष प्रहार की प्रक्रिया के ठीक विपरीत होती है।

सितार वादन में अभ्यासोपरान्त ही मींड का प्रयोग जो कि एक ही पर्दे (सुन्दरियां) पर, आरोही क्रम व अवरोही क्रम में निकालना, अभ्यास से माधुर्य व रागोचित स्वर–व्यवस्था को प्रदर्शित करता है। मिज़राब के आघात का महत्त्व अर्थात कितने हल्के से व दबाव बनाते हुए स्वरोत्पत्ति करना, सितार वादन की कला को आत्मसात् करने के उपरान्त ही समझा जा सकता है। उस्ताद अब्दुल हलीम जाफर खाँ साहब ने इन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रखकर 'जाफर खानी' गतों का प्रचार किया है। मैहर घराने के संस्थापक बाबा अल्लाउद्धीन खाँ साहब ने तीनताल के अतिरिक्त अन्य प्रचलित तालों में भी गतों का निर्माण किया। दा रा तथा अन्य संयुक्त बोलों को विभिन्न छन्दों में पिरोकर सुन्दर गतें प्रचलित की। मसीतखानी गतों को केवल निश्चित बोलों के अतिरिक्त मीड,

घसीट, कृन्तन, गिटकरी व ठोक आदि का प्रयोग आवश्यकतानुसार, कर्णप्रिय बनाने के लिए कलाकार वादन प्रस्तुत करते हैं। उनका उद्धेश्य केवल रागोचित नियमों को ध्यान में रखकर केवल कर्णप्रिय प्रस्तुति का होता है। अतः तंत्रकारी, गायकी का ही परिष्कृत रूप है जो किसी वाद्य में मिज़राब या अन्य आघातक के प्रयोग से प्रस्तुत किया जाता है।

अतः गायकी व तंत्रकारी कोई अलग–अलग शैली नहीं मानी जा सकती। दोनों एक दूसरे के संपूरक हैं। कोई भी वादक केवल गायकी नहीं बजा सकता। प्रकृति प्रदत्त कण्ठ स्थित स्वर–यंत्र की नकल करना वादन में असंभव लगता है।

अभ्यास प्रश्न

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. सितार को ..... वीणा का विकसित रुप मानते हैं
2. ..... घराने के द्वारा वादन की नई शैली 'गत' का आविष्कार किया गया।
3. गतों के ..... प्रकार माने जाते हैं।
4. मसीतखानी गत में बोलों का क्रम ..... प्रकार रहता है।
5. ..... रज़ाखनी गत के आविष्कारक माने जाते हैं।
6. बाज प्रमुखतः ..... प्रकार के माने गये हैं।
7. आविर्भाव और तिरोभाव करते हुए राग को पूर्ण रूप से प्रदर्शित करना ही ..... गान कहलाता है।
8. स्वर, शब्द और ताल की सहायता से जो रचना तैयार होती है उसे प्राचीन समय में ..... कहते थे।
9. गीत तथा आलापों में विभिन्न छोटे–छोटे भागों को ..... कहते हैं।
10. अचल ठाठ में ..... परदे होते हैं।
11. चल ठाठ के सितार में ..... परदें होते हैं।
12. मिज़राब से बाज़ के तार पर बाहर से अन्दर की ओर प्रहार करने पर ..... बोल निकलता है तथा इस क्रिया को ..... कहते हैं।

ख. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. गायन व तंत्रकारी पद्धति से आप क्या समझते है। वादन में इसका क्या महत्व है।
2. गत से क्या अभिप्राय है? गत कितने प्रकार की होती है?
3. वादन में प्रयुक्त विभिन्न बोलों के निकास विधि को समझाइये।
4. आलाप से आप क्या समझते हैं। प्राचीन काल में आलाप का क्या विधान था वर्णन कीजिए।
5. वादन में आलाप का वर्णन कीजिए।
6. जोड़ आलाप एवं जोड़ झाले का वर्णन कीजिए।

4.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप गायन एवं तंत्रकारी पद्धति के विषय में जान चुके होंगे। गायन व तंत्रकारी पद्धति अलग–अलग शैली नहीं मानी जा सकती। दोनों एक दूसरे के संपूरक हैं। प्राचीन काल में वादन का अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था और वादन हमेशा गायन का अनुकरण ही करता था, अर्थात गायन की संगति के लिए ही वादन का प्रयोग होता था। धीरे–धीरे वाद्यों का स्वतन्त्र वादन प्रारम्भ हुआ परन्तु वादक अभी भी गायन का अुनसरण करते हुए बंदिश गीत आदि का ही वादन किया करते थे। यही पद्धति आगे चलकर गायकी अंग का वादन कहलायी। तत्पश्चात वाद्यों पर बजाने के लिए गतकारों या तंत्रकारी पद्धति का विकास हुआ। आप वादन में बजाए जाने वाले आलाप, जोड आलाप, जोड झाला, झाला आदि के बारे में भी समझ चुके होंगे। आप मिज़राब के बोलों के विभिन्न प्रकार के छन्दों के विषय में भी जान चुके हैं।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. त्रितंत्री वीणा
2. सेनिया घराने
3. दो (मसीतखानी और रज़ाखानी गत)
4. दिर, दा, दिर दारा दा, दारा
5. जौनपुर के रजा खाँ
6. दो (पूरब बाज व पश्चिम बाज)
7. आलप्ति गान
8. आक्षिप्तिका
9. विदारी
10. चौबीस
11. 16 से 19
12. 'दा', आकर्ष

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वसन्त, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ0प्र0।
2. श्रीवास्तव, प्रो0 सतीश चन्द्र, सितार वादन भाग–1।
3. भटनागर, रजनी, सितार वादन की शैलियां, कनिष्क पब्लिशर्स, दिल्ली।
4. शर्मा, डॉ0 स्वतंत्र, पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धपि एवं भारतीय संगीत।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गायन एवं तंत्रकारी पद्धति को विस्तार पूर्वक समझाइये।
2. वादन में आलाप, जोड आलाप, जोड झाला, झाला आदि के विषय में लिखिए।

इकाई 5 – पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत, स्थाई व अन्तरे के तोडे आदि को लिपिबद्ध करना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 मसीतखानी गत का परिचय
1.4 पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत व तोड़े
1.4.1 राग मियां की तोडी
1.4.2 राग गांधारी
1.4.3 राग गुजरी तोडी
1.4.4 राग मियां मल्हार
1.4.5 राग दरबारी कान्हड़ा
1.4.6 राग भीमपलासी
1.4.7 राग मेघ मल्हार
1.5 सारांश
1.6 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रदर्शन कला–संगीत में स्नातकोत्तर, तृतीय सेमेस्टर (एम0पी0ए0एम0आई0–602) पाठ्यक्रम की पॉचवी इकाई है। इससे पूर्व की इकाईयों के अध्ययन से आप संगीतज्ञों के जीवन से परिचित हो चुके हैं। आप संगीत रत्नाकर, चतुर्दडिप्रकाशिका, नारदीय शिक्षा, संगीत मकरंद, संगीत चिंतामणि, संगीतांजली व संगीत पारिजात के बारे में भी जान चुके हैं।

इस इकाई में पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत व तोडों को प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई में आपकी सुविधा के लिये मसीतखानी गत की स्वरलिपियाँ प्रस्तुत की गई हैं।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप मसीतखानी गत तथा तोड़ों को लिपिबद्ध कर सकेंगे और इन्हे पढ़कर क्रियात्मक रूप में प्रस्तुत कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

1. मसीतखानी गत को स्वरलिपि के माध्यम से पढ़ एवं बजा सकेंगे।
2. स्वर को लिपिबद्ध कर सकेंगे तथा लिपिबद्ध स्वर को पढ़ सकेंगे।
3. तोड़ों के माध्यम से राग का प्रस्तार कर सकेंगे।
4. अन्य रागों में भी तोडे बनाने में सक्षम होंगे।

1.3 मसीतखानी गत का परिचय

फिरोज खॉ के पुत्र मसीत खॉ ने सितार वादन की एक शैली को विकसित किया जिसे मसीतखानी शैली कहते हैं। इसमें बजाई जाने वाली राग रचनाएँ मसीतखानी गत कहलाती हैं। इससे पूर्व सितार में बजाई जाने वाली सेनी घराने की गतों की कठिनाई और विस्तार के स्थान पर मसीतखानी गतों की सरलता, मधुरता तथा अल्प विस्तार ने संगीत प्रेमियों को आकर्षित किया तथा इसका प्रचार बढ़ता गया। सेनी घराने की गतें ताल की दो आवृत्तियों के स्थाई–अंतरे की होने के कारण अधिक विस्तार वाली थी जिन्हें याद रखने में वादकों को कठिनाई होती थी। मसीतखानी गत एक आवृत्ति की सरल राग रचनाएं होती हैं जिस कारण यह लोकप्रिय है।

मसीतखानी गत को अब विलम्बित गत के रूप में भी जाना जाता है। इसमें स्थायी तथा अंतरा दो भाग होते हैं। इसे पश्चिमी बाज भी कहा जाता है।

मसीतखानी गत के बोल – सितार में मिजराब के आघात से बोल उत्पन्न होते हैं। बाज के तार में मिजराब से अपनी तरफ को आघात को 'आकर्ष' व **'दा'** बोल कहा जाता है। इसके विपरीत बाहर की ओर अपकर्ष 'प्रहार' से **'रा'** बोल निकलता है। इन दोनों बोलों को शीघ्रता से बजाने पर **'दिर'** बोल निकलता है। इन तीनों बोलों के कलात्मक संयोजन से सितार गतों में सौन्दर्य उत्पन्न किया जाता है। मिजराब के इन बोलों का राग–ताल के नियमों का पालन कर जो राग रचनाएं निर्मित होती हैं, उन्हें 'गत' कहते हैं। मसीत खॉ द्वारा खोजे गए 'गत' स्वरूप को मसीतखानी गत कहते हैं। इन गतों को तीनताल में 12वीं मात्रा आरम्भ कर बजाने की प्रथा है जो इस प्रकार हैं :

मसीत खानी गत (तीनताल)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
											दिर	दा	दिर	दा	रा
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा					
X				2				0				3			

इन बोलों के आधार पर विभिन्न रागों में मसीतखानी गतों को निर्माण किया जाता है।

1.4 पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत व तोड़े

1.4.1 राग मियाँ की तोडी :–

परिचय – यह राग तोड़ी थाट से उत्पन्न माना जाता है। इस राग में रिषभ, गन्धार व धैवत कोमल तथा तीव्र मध्यम का प्रयोग किया जाता है। पंचम स्वर का प्रयोग वक्र रूप से किया जाता है। इस राग को केवल 'तोड़ी' नाम से भी जाना जाता है। कई विद्वान गायक पंचम का सीधे व निरन्तर प्रयोग करते हैं। कहा जाता है कि इस राग को प्रथम बार, संगीत सम्राट तानसेन ने प्रचलित किया था। फलतः इस राग को मियाँ कि तोड़ी कहा जाता है। तोड़ी के अनेक प्रकार प्रचलित हैं जैसे गुर्जरी तोड़ी, बिलासखानी तोड़ी, भूपाल तोड़ी, लक्ष्मी तोड़ी, लाचारी तोड़ी आदि। वादी स्वर ध तथा संवादी स्वर ग है। समप्रकृतिक रागों में गुर्जरी तोड़ी निकटस्थ है।

समप्रकृतिक राग– गुजरी तोडी

आरोह – सा रे ग म॑ ध प म ध नि सां।

अवरोह – सां नि ध प म॑ ग रे ग रे सा।

पकड़ – ध प म॑ ग, रे ग रे सा।।

मसीतखानी गत – (तीनताल)

स्थाई

रे	सानि	ध	सारे	ग	ग	ग	रेग	म॑	धध	प	म॑ग	रे	गरे	सा,	गग दिर गरे	
दा	दिर	दा	दिर	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा,	दिर	
3				×				2				0				
ग	म॑म॑	प	म॑	ध	नि	नि	धप	म॑	धप	म॑	ग	रे	गरे	सा		
दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दाऽ	रा		
3				×				2				0				

अन्तरा

ग	म॑म॑	ध	नि	सां	सां	सां	रेंगं	रें	सांनि	ध	पम॑	ग	रे	सा,	मम दिर
दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	राऽ	दा	दा	रा	
3				×				2				0			

तोड़े (चौगुन लयकारी)

1	सारेगरे	सांनिधनि	सारेगरे	सानिधनि	सा–सानि	धनिसा–	सानिधनि	स–	मुखडा
		2				0			
2	गरेसारे	गम॑धप	म॑धनिध	पम॑गरे	सानिधनि	सा–धनि	सा–धनि	सा–––	मुखडा
		2				0			
3	गगरेसा	निसारेग	म॑म॑गरे	सारेगम॑	धधपम॑	गम॑धनि	गंगंरेंसां	निनिधप	
	×				2				
	मगरेसा	म॑म॑गरे	सारेगेर	ग–,म॑म॑	गरेसारे	गरेग–	म॑म॑गरे	सारेगरे	ग
	0				3				×

4	गगरेग	गरेगमं	धधपध	धपमंध	निनिधनि	निधमंध	गंगरेंगं	गंरेंसारें		
	×				2					
	सांनिधनि	धपमंग	मंधपमं	गगरेसा	धनि़सारे	ग–धनि़	सारेग–	धनि़सारे		ग
	0				3					×
5	गगरेमं	मंगधध	पमनिनि	धपसांसां	निधगंगं	रेंसांनिनि	धपमंध	निसांरेंसां		
	×				2					
	निधपमं	गरेसारे	––सारे	ग–गरे	सारेग–	सारेग–	गरेसारे	ग–सारे		ग
	0				3					×

तोडे – छःगुन लयकारी

6	सारेसारेगरे	गमगमंधप	धमधनिधनि	सांनिसारेंगंरें	
	×				
	गंगंरेंसांरेंसां	रेंरेंसांनिसांनि	सांसांनिधनिध	निनिधनिधनि	
	2				
	मंगरेसानि़ध़	नि़सारेगसारे	ग–––––	मंगरेसानि़ध़	
	0				
	नि़सारेगसारे	ग–––––	मंगरेसानि़ध़	नि़सारेगसारे	ग
	3				×

तोडे – अठगुन लयकारी

7	सनिध़नि़सरेसा–	गरेसानि़सरेग–	मंगरेसारेगमं–	धपमंगमंधनि–	
	×				
	सानिधपमंधसां–	गंरेंसांनिधनिसां–	निसांरेंसांधनिसांनि	धनिसांनिधनिधप	
	2				
	मंधनिधपमंगमं	गमंधपमंगरेग	सारेगमंधनिसारें	सांनिधपमंगरेसा	
	0				
	मंधपमंगरेसारे	ग–––मंधपमं	गरेसारेग–––	मंधपमंगरेसानि	ग
	3				×

1.4.3 राग गान्धारी :–

परिचय – यह राग आसावरी थाट से उत्पन्न होता है। इसके आरोह में गान्धार स्वर वर्जित है। इस राग का वादी स्वर धैवत व संवादी गान्धार है। इस राग का गायन–वादन समय दिन का दूसरा प्रहर माना गया है। इस राग में रिषभ के दोनों प्रकारों, कोमल व शुद्ध का प्रयोग किया जाता है। इस राग को षाडव–सम्पूर्ण जाति का माना जाता है। यह एक गम्भीर प्रकृति का राग है। आरोह जौनपुरी तथा अवरोह भैरवी की तरह है। यह राग उत्तरांग प्रधान है।

समप्रकृतिक राग – आसावरी और जौनपुरी
अवरोह – सा रे, म प ध, नि सां।
अवरोह – सां नि ध, प, ध म, प ग, रे सा।
पकड़ – सा ध, ध प, ध म प, ग रे सा।

आलाप :–

1. सा, रे म प, ग रे सा, सा ध, प, ध, म प, ग, रे सा।
2. सा रे सा, ध, ध, प, ध नि ध, म प, ग रे सा।
3. रे म प, नि ध ध प म प नि ध प, ध म, प, ग ग, रे सा।
4. सा ध प, ध म प, ग रे सा, रे म प, ध ध नि सां, ध नि ध, प ध म प, ग रे सा।
5. सा रे म प, म प ध नि ध, नि नि सां, रे नि सां रें नि ध, ध, प, ध म प, ग ग, रे रे सा।
6. रे नि़ सा, रे म प ध ध, प, ध नि सां, रें मं गं रें, रें सा, रें नि ध प, म प ध म प, ग ग रे सा।

मसीतखानी ग़त – तीनताल

स्थाई

								मम		प,	धध	नि	सां		
ध	ध	प	धम	प	निध	प	मप	ग	रे	सा,	निसा	रे	मम	प	धम
×				2				0				3			
प	प	ध	मप	नि	धध	म	पप	ग	रे	सा,	,				
×				2				0				3			

अन्तरा

								पप		म	पप	ध	नि		
सां	सां	सां	रेंरें	नि	धध	प	मप	ग	रे	सा					
×				2				0				3			

तोडे – चौगुन लयकारी

1 | सारेमप धधपप मपधप गगरेरे | सा–रेसा धपमप गरेसा– मुखडा
2

2 | रेरेसासा रेनि़सा– रेमप– धधप– |
× | निधप– मपधप गरेरेसा मपधप |
2 | गरेरेसा मपधप गरेरेसा मुखडा |
0

3 | धधप– मपधनि ध–पप धमपप |
× | धनिसां– रेंनिधप गरेसा– रेंनिधप |
2 | गरेसा– रेंनिधप गरेसा– मुखडा |
0

4 | सारेरेमप | रेममपध | मपपधनि | पधधनिसां |
×
| निसांसांरेंसां | रेंनिनिधप | धममपग | गरेरेनिसा |
2
| सारेरेमप | ध–मप | ध––– | सरेरेमप |
0
| ध–मप | ध––– | सारेरेमप | ध–मप | ध
3 ×

5 | धधपध | धपमप | निनिधनि | निधपध |
×
| रेंरेंसारें | रेंसानिध | निनिधनि | निधपध |
2
| मपधम | गरेरेसा | –रेमप | ध–गरे |
0
| रेसा–रे | मपध– | गरेरेसा | –रेमप | ध
3 ×

6 | मगरेरे | सारेनिसा | धमपग | रेमपध |
×
| निधपध | निसांरेंसा | पधनिसां | मंगंरेंसां |
2
| निधपध | सांनिधप | धपमप | गगरेसा |
0
| सारेमप | ध–सारे | मपध– | सारेमप | ध
3 ×

तोडे – छगुन लयकारी

7 | सारेमगरेग | रेमपधमपम | पधनिसांनिध | निसारेंमंगंरें |
×
| सांरेंसांनिसांरें | निधपमपध | पमगरेमप | मगरेसारेसा |
2
| निधपधमप | पमगरेमप | ध––––––– | निधपधमप |
0
| पमगरेमप | ध–––––– | निधपमपम | पमगरेमप | ध
3 ×

तोडे – अठगुन लयकारी

8 | गरेसागरेसानिसा | रेमपरेमपधप | मपधमपधमप | धनिसांधनिसारेंसां |
×
| गंगंगंरेंसांनिसां | रेंरेंरेंनिधनिसां– | सांसांसांनिधपध– | निनिनिधपमप– |
2
| धधधपमगरे– | रेरेरेसानिसारेसा | म–––प––– | ध––––रेसा |
0
| निसारेसाम––– | प–––ध––– | रेरेरेसानिसारेसा | म–––प––– | ध
3 ×

1.4.4 राग गुर्जरी तोडी :–

परिचय – राग गुर्जरी तोड़ी भी राग तोड़ी का ही प्रकार है। तोड़ी थाट का यह राग पंचम के प्रयोग के बिना ही गाया/बजाया जाता है। राग में रे ग ध कोलत तथा म॑ तीव्र मध्यम तथा अन्य स्वर शुद्ध है। गायन समय प्रातःकाल का दूसरा प्रहर है। इस राग का वादी स्वर धैवत तथा संवादी स्वर रिषभ है। इस राग का विस्तार मुख्य रूप से उत्तरांग में होता है। इस राग की जाति षाड्व–षाड्व मानी जाती है। यह तोड़ी के प्रकारो में से अधिक प्रचलित व लोकप्रिय राग है।

समप्रकृतिक राग– मियाँ की तोड़ी

आरोह – सा रे ग म॑ ध नि सां।

अवरोह – सां नि ध म॑ ग रे सा।

पकड़ – ध, म॑ ग रे, नि॒ ध॒ सा।

आलाप :–

1.सा, रे ग रे सा, ध॒ नि॒ सा, रे रे, ग रे सा

2.सा रे ग म॑ ध , म॑ ग रे ग रे, सा

3.ग रे ग म॑ ध, म॑ध, म॑ ग रे ग म॑ ध म॑ ग रे, रे सा।

4.रे – ग रे नि॒ ध, सा रे ग म॑ ग म॑ ध, म॑ ध नि ध , म॑ ग रे रे, ग रे सा।

5.ध म॑ ग रे ग म॑ ध, नि ध, म॑ ध, म॑ नि ध– म॑ ग रे रे, ग रेसा।

6.ध म॑ ध, नि ध म॑ ध नि सां, रें रें नि ध, म॑ ध नि सां रें, गं रें, सां रें, नि ध, म॑ ग रे रे, ग रे, सा।

7.सा रे ग रे ग म॑ ध, म॑ ध नि सां, रें रें गं म॑, ग रे गं रें सां, ध नि ध, म॑ ग रे, ग रे सा।

मसीतखानी गत – (तीनताल)

स्थाई

												धध	म॑	गग	रे	गम॑
												दिर	दा	दिर	दा	राऽ
ध	–	–	म॑म॑	ध	निध	म॑	ध	म॑	ग	रेसा	सासा	ध॒	नि॒नि॒	सा	रे	
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	रा	राऽ,						
×				2				0				3				
म॑																
ग	–	–	म॑म॑	ध	निध	म॑	ध	म॑	ग	रसा						
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	रा	राऽ,						
×				2				0				3				

अन्तरा

												म॑म॑	ग	म॑म॑	ध	निध
												दिर	दा	दिर	दा	राऽ
सां	–	–	सांरें	गं	रेंनि	ध	ध	म॑	ग	रेसो						
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	रा	राऽ						
×				2				0				3				

तानें – चौगुन लयकारी

1 सारेगमं | रेगमंध गमंधनि निधनिध मंधमंग | धमंगरे धमंगरे धमंगरे मुखड़ा |
2 0

2 मंधमंध | निधमध रेगमंमं ध–मंध रेगरेसा | धनिसारे ग–रेसा –निध– मुखडा |
2 0

3 रेगमंग | गमंधमं मंधनिध धनिसांनि रेंसांनिसां | धमंगरे सारेगरे ध––– धमंगरे |
2 0

| सारेगमं ध––– धमंगरे सारेगमं ध तिहाई

4 | सारेगरे गगरेसा रेगमंमं गमंगरे | गमंधमं धधमंग मंधमंग रेगरेसा |
× 2

| धमंधमं गमंधध ध––– धमंधमं | गमंधध ध––– धमंधमं गमंधध | ध तिहाइ
0 3 ×

तानें – छगुन लयकारी

5 | गरेसारेगमं मंगरेगमंध धमंगमंधनि निधमंधनिसां |
2

| गरेंसांनिधमं रेंसांनिधमंग सांनिधमंगरे निधमंगरेसा |
0

| मंगरेसागमं ध––मंगरे सागमंध–– मंगरेसागमं | ध
3 ×

तानें – अठगुन लयकारी

6 धधमंगरेगरेसा निनिधमंगमंगरे सांसांनिधमंधमंग रेंरेंसानिधनिधमं
2

गंगंरेंसांनिसांनिध मंमंगंरेंसारेंसांनि निसांरेंरेंसांनिधनि मंधनिनिधमंगरे
0

सारेगरेगमंधमं ध–––सारेगरे गमंधमंध––– सारेगरेमंमंधमं ध
3 ×

7 गगरेगगरेसारे मंमंगमंमंगरेग धधमंधधमंगमं निनिधनिनिधमंध
×

रेंरेंसांरेंरेंसानिसां गंगंरेंगंगंरेंसारें मंमंगंरेंसानिधनि गंगंरेंसांनिधमंध
2

सांसांनिधमंगमंध मंमंगरेसारेगमं ध–गमंध–गमं ध–––मंमंगरे
0

सारेगमंध–गमं गमंध–गमंध– मंमंगरेसारेगमं ध–गमंध–गमं ध
3 ×

1.4.5 राग मियाँ मल्हार :–

परिचय – यह राग ऋतु प्रधान राग है। काफी थाट से उत्पन्न यह राग वर्षा–काल में गाया बजाया जाता है। संगीत सम्राट तानसेन द्वारा प्रचलित मल्हार का एक प्रकार है। ग स्वर कोमल व आन्दोलित है तथा दोनो निषादों का प्रयोग किया जाता है। अवरोह में कोमल निषाद व आरोह में शुद्ध निषाद का प्रयोग किया जाता है। इस राग के अवरोह में धैवत प्रयोग नहीं किया जाता है तथा मध्यम स्वर वक्र प्रयुक्त होता है। रे प की संगति तथा नि म प, स्वर संगति वाचक मानी जाती हे। इस राग का वादी स्वर षड्ज तथा सम्वादी पंचम है। राग की जाति सम्पूर्ण–षाडव मानी जाती है। मल्हार के कई प्रकार और भी प्रचलन में है। जैसे सूरमल्हार, गौड़मल्हार, रामदासी मल्हार, जयन्त मल्हार आदि।

समप्रकृतिक राग– बहार

आरोह – सा, म रे प, ग ग म रे, प नि ध नि सां।

अवरोह – सां नि प, म प , ग ग म रे सा।

पकड़ – रे प, म प, ग ऽ म रे सा, नि ध़ नि़ सा।

आलाप :–

1. सा, नि़ म़ प़, नि़ ध़ नि़ सा, रे म रे सा।
2. म रे प, म प ग ग म रे , सा, नि़ ध़ नि़ सा।
3. नि़ सा, म रे प, म प, नि़ म प, ग ग म रे, सा।
4. नि़ प म़ प़, नि़ ध़ नि़ सा, रे प म प, ग ग म रे, सा, रे रे प, म प, नि़ प म प, नि़ ध नि़ प, नि़, म प, ग ग म रे, सा, नि़ ध़ नि़ सा।
5. म रे प , म प नि़ ध नि, सां, नि़ म प, नि ध नि सां नि़ म प, नि़, ध नि सां, रें रें सां, नि़ ध नि सां, नि़ प, ग ग म रे, सा।
6. म प, नि़ ध नि सां, नि़ ध नि, सां, रें रें सां ग़ं ग़ं मं रें रें सां, नि़ ध नि सां, सां नि़ म प ग ग म रे सा नि़ म़ प़ नि़ , ध नि सा।

मसीतखानी गत – (तीनताल)

स्थाई

											गम	रे	सासा	नि	मप	
											दिर	दा	दिर	दा	राऽ	
नि़	निनि़	सा	निसा	रे	रे	प	मप	गम	रे	सा,	मम	रे	पप	ग	मरें	
नि़	निनि़	सा	निसा	रे	रे	प	मप	गम	रे	सा						
×				2				0				3				

अन्तरा

											मम	रे	पप	नि	नि	
											दिर	दा	दिर	दा	राऽ	
सां	सां	सां	गंमं	रे	निसा	नि	प	गम	रे	सा,						
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	रा	रा						
×				2				0				3				

तानें – चौगुन लयकारी

1. गमरेसा | निधनिसा मपनिध निनिसा– निनिसा– | निधनिसा निधनिसा निधनिसा मुखडा |
   2 0
2. निधधनिसा | रेसानिसा गममरेसा निधनिसा निपपमप | गमरेसा रेपग– मरेसा– मुखडा |
   2 0
3. | गगमम रेसानिसा रेपगग मरेनिसा | रेरेपप मपनिप निनिपप गमरेसा |
   2 0

| –निधनि सां––नि धनिसां– –निधनि नि तिहाई
3 ×

तानें – छगुन लयकारी

4 | गगगमममम रेरेरेसानिसा रेरेरेपपप निनिनिपमप |
2
| निनिनिधधध निनिनिसासासा निनिनिपपप गगगमरेसा |
0
| नि–धनि–सा नि––नि–ध नि–सानि–– नि–धनिऽसा | नि तिहाई
3 ×

तानें – अठगुन लयकारी

5 | निधनिसारेसानिसा रेपमपगमरेसा मपनिमनिपमप निधनिसारेंसांनिसां |
×
| गंमंगंमंरेंसांनिसां रेंरेंसारेंनिसांनिप सांसांनिधनिसारेंसां निनिसारेंनिसांनिप |
2
| निनिमपगमरेसा मपनिधनिसांनिप मपगमरेसानिसा नि–––मपनिध |
0
| निसांनिपमपगम रेसानिसानि––– मपनिधनिसांनिप मपगमरेसानिसा | नि
3 ×

6 | निनिधनिनिधनिसा रेरेसारेरेसानिसा ममरेममरेसारे निनिपनिनिपमप |
×
| रेंरेंसारेंरेंसांनिसां मंमंरेमंमंरेंसारें निनिपनिनिपमप ममरेममरेसारे |
2
| मपनिधनिसारेंसां निसारेंपनिसांमप गमरेसारेसानिसा निसारेनिधनिसा– |
0
| पपमपगमरेसा नि–––पपमप गमरेसानि––– पपमपगमरेसा | नि
3 ×

7 | निसारेनिसारेनिसा मरेपमरेपमप निमपनिमपनिध निसारेंनिसारेंनिसां |
×
| मंमंमंरेंनिसां रेंरेंरेंसांनिधनिसां निनिनिसारेंसांनिसां निनिनिधनिपमप |
2
| मममपगमरेसा मममपनिधनिसां निपमगमरेनिसा नि–––मममप |
0
| निधनिसांनिपमग मरेनिसानि––– मममपनिधनिसां निपमगमरेनिसा | नि
3 ×

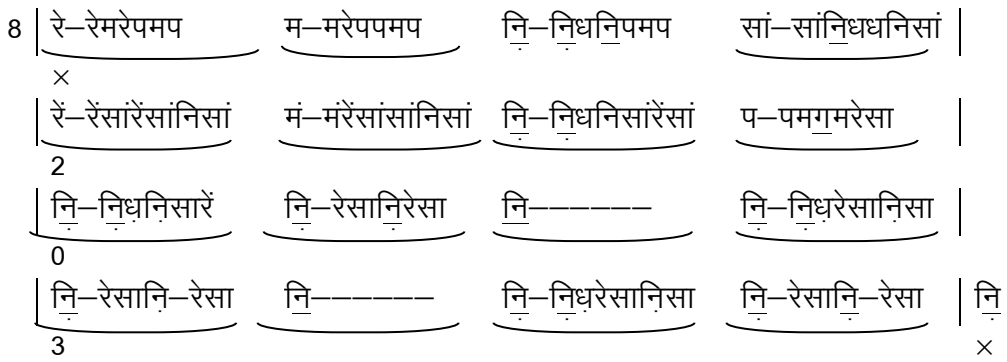

1.4.6 राग दरबारी कान्हडा :–

परिचय – यह राग आसावरी थाट से उत्पन्न होता है। इस राग में ग, ध व नि स्वर कोमल लगते हैं तथा अन्य स्वर शुद्ध लगते हैं। अवरोह में धैवत वर्जित होने से यह राग सम्पूर्ण–षाडव जाति का माना जाता है। इस राग में गान्धार अपनी ही श्रुतियां में आन्दोलित है। यह इस राग का वैचित्रय है। यह राग तानसेन द्वारा प्रचलन में लाया गया तथा काफी लोकप्रिय है। इस राग का चलन मुख्य रूप से मन्द्र व मध्य सप्तक में हैं। इस राग का गायन मध्य रात्रि में किया जाता है। इस राग की प्रकृति गम्भीर है। वादी स्वर रे तथा सम्वादी प माना जाता है।

समप्रकृतिक राग – अड़ाना।
आरोह – सा रे ग, म प ध नि सां।
अवरोह – सां ध नि प, म प, ग, म रे सा।
पकड़ – सा रे ग, रे सा ध़ नि़ सा।

आलाप :–

1. सा, नि़ सा रे, ध़ नि़ प, ध़ नि़ सा, सा ध़ नि़ रे सा।
2. सा, रे रे सा, ध़ नि़ सा रे, ग, म रे सा, ध़ नि़ सा।
3. रे रे सा, नि़ सा, ध़ नि़ सा, रे रे ग, म रे , सा।
4. सा रे ग, म प ध, नि प, म प, नि प ग रे सा।
5. नि़ सा रे ग, म प, ध, नि़ सां , ध़ नि़ प, म प ग, म रे सा।
6. सा रे ग, म रे, म प ध, नि़ प म प, ध़ नि़ प, म प ध़ नि़ सां नि़ सां रें, ध़ नि़ सां, ध़ नि़ प, ग म रे सा।
7. नि़ सा रे, ध़, नि़ सा रे ग, म प, म प ध़, नि़ सां रें गं, मं रें सां रें रें, सां, रें, ध़ नि़ प, म प ध़ नि़ सां, ध़ नि़ प, ग म रे सा।

मसीतख़ानी ग़त – तीनताल

स्थाई

नि

रेरे | सा निनि सा रे
दिर | दा दिर दा रा
गम | रे सासा नि सा

| ध नि प मप | ध निनि सा रे | गम रे सा, |
| रे रे सा निसा | ध निनि सा रे | गम रे सा |

× 2 0 3

अन्तरा

मम | प धध नि ध
दिर | दा दिर दा राऽ

| सा सा सा गंमं | रे सासा धनि प | गम रे सा, |
| दा दा रा दिर | दा दिर दा रा | दा रा रा |

× 2 0 3

तानें – चौगुन लयकारी

1 | गमरेसा निसारेसा धनिसारे गमरेसा | निपमप गमरेसा धनिरेसा मुखडा
2 0

2 निसारेसा | धनिरेसा गगगम रेरेरेसा निपमप | गमरेसा गमरेसा गमरेसा मुखडा |
2 0

3 | ममपग मरेसा– निसारेसा धनिप– | धनिसारे निरेसा– धनिसा– –निसारे |
2 0

| ध––– –निसारे ध––– –निसारे ध तिहाई
3 ×

तानें – छगुन लयकारी

4 | सारेसानिसारे साधनिसारेसा रेमरेगमरे मपधनिमप |
×
| धनिसांनिसारें गंमंरेंसांरेंसां निसांरेंधनिप मपगमरेसा |
2
| निमपगमरे सारेसानिसारे ध––––– निमपगमरे |
0
| सारेसानिसारे ध––––– निमपगमरे सारेसानिसारे | ध
3 ×

तानें – अठगुन लयकारी

5 | रेरेसारेरेसानिध गमरेगमरेसारे मपधनिपपमप धनिसांधनिसांनिसां |
×
| रेंरेंसांरेंरेंसानिसां गंमंरेंगंमंरेंसांरें धनिपधनिपमप गमरेगमरेसारे |
2
| धनिसाधनि सारेसा ममरेगमरनिसा रेरेसानिसारेनिसा ध–––मरेग |
0
| मरेनिसारेरेसानि सारेनिसाध––– ममरेगमरेनिसा रेरेसानिसारेनिसा | ध
3 ×

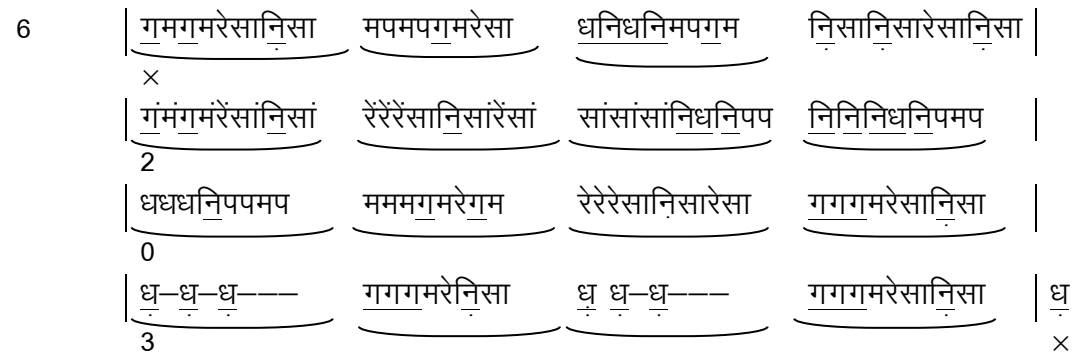

1.4.11 राग भीमपलासी :–

परिचय – यह राग काफी थाट से उत्पन्न है। इस राग में गान्धार व निषाद कोमल होते हैं। अन्य सभी स्वर शुद्ध है। इस राग के आरोह में रे व ध वर्जित है। इस राग का गायन समय दिन का तीसरा प्रहर है। इस राग का समप्रकृति राग धनाश्री है। इस राग की जाति औडव–सम्पूर्ण है। इस राग का वादी स्वर म तथा सम्वादी सा है। इस राग के न्यास के स्वर सा, म व प है। यह राग भीम व पलास दो शब्दों से बना है। इस राग से दो राग भी प्रचलित हैं। कही–कहीं इन रागों की छाया स्पष्ट होती है।

समप्रकृति राग – धनाश्री
आरोह – नि सा ग म प नि सां।
अवरोह – सां नि ध प म ग रे सा।
पकड़ – नि सा म, ग म प, म ग रे सा।

आलाप :–

1. सा, नि ध प नि, सा, रे सा, नि सा।
2. नि सा, ग म, ग रे सा, नि ध प नि सा।
3. सा, नि सा ग, म प, म प, ग म प म, ग रे सा–
4. सा नि ध प, नि सा ग म प, ग म प नि, ध प म ग म प म ग, रे सा।
5. ग म प, नि ध प, म प नि ध प, ग म प, नि सां प नि सां रें सां , नि ध प, ग म ग रे सा।
6. प म ग म प, नि ध प, म ग म प, नि सां, गं रें सां, ग मं गं, रें सा, नि ध प म प, ग म प, म ग, रे सा।
7. नि सा ग म प, नि सां गं रें नि सां, ग मं पं मं, गं रें सा, नि ध प, म प, ग म ग रे सा।

मसीतखानी ग़त – तीनताल

स्थाई

मग | रे सासा निसा गम

प– प प गम	प सांनि ध प	मग रे सा, गरे	सा निध़ प नि
×	2	0	3
सा– सा सा गम	प सानि ध प	मग रे सा, ,	
×	2	0	3

अन्तरा

मम | ग मम प नि

सा सा सा गरे	सा निध प प	मग रे सा,	
×	2	0	3

तोडे – चौगुन लयकारी

1 गरेसारे | निसारेसा गमपम गरेसा– निनिधप | मपधप गमपम गरेसा– मुखडा
2

2 | गगरेसा निसारेसा मगपम गरेसा– | पनिसा– निधप– गरेसा– मुखडा |
2 0

3 | पनिसाग रेसानिसा गममपम गरेसा– | सानिधप ध–पमप गममगरेसा निसागम |
2 0

प––– निसागम प––– निसागम	प––– तिहाई
3	×

तोडे – छगुन लयकारी

4 | निसागरेसासा गमगरेसासा गमपमगरे निसागरेसासा |
2

निनिधपमप गमपमगम गरेसानिसासा प–पम–म
0

प–––––– प–पग–म प–––––– प–पगम–म	तिहाई
3	×

तोडे – अठगुन लयकारी

5 | गगरेसानिसागम ममगरेसागमप पपमगसागमप निनिधपमपनिसां |
×

गंगंरेंसांनिनिधप रेंरेंसांनिधपमप निनिधपमगमप धधपमगसागम
2

पपमगरेसानिसा ममगरेसानिधप़ निनिसागम–गम प–––ममगरे
0

सानिधपनिनिसाग म–गमप––– ममगरेसानिधप़ निनिसागमप–गम	प
3	×

6 | गरेसागरेसानिसा पमगपमगमप निधपनिधपमप रेंसांनिरेंसांनिसारें |
×
| पनिसांनिसारेंनिसां मपनिमपनिपनि गमपगमपमप सागमसागमगम |
2
| पमगमगरेसा– सागमसागमगम पमगरेसा–गम प–––सागमसा |
0
| गमगमपमगरे सा–गमप––– सागमसागमगम पमगरेसा–गम | प
3 ×

1.4.13 राग मेघमल्हार :–

परिचय – राग मेघ अथवा मेघ मल्हार एक ही राग के नाम हैं। यह राग प्राचीन रागों में से एक राग है। मल्हार अंग लगने पर यह मेघ मल्हार हुआ। इसमें गंधार व धैवत वर्ज्य माना गया है। इसके आधार पर इसकी जाति औडव–औडव मानी गयी है। इस राग में कई कलाकार गंधार का भी प्रयोग करते हैं परन्तु इसके प्रचलित रूप में गंधार वर्जित ही है। इस आधार पर इस राग का वादि स्वर षड्ज तथा सम्वादी 'मध्यम' माना गया है। इसमें दोनों निषाद प्रयोग किये जाते हैं। मरेप यह मल्हार का प्रमुख अंग इस राग में प्रयोग किया जाता है। इस राग का स्वर विस्तार तीनों सप्तकों में है। इसका गायन समय ऋतुकालिन यानि वर्षा ऋतु का है। इस राग में मध्यम ऋषभ के बार–बार कण प्रयोग से यह राग जल्दी पहचान में आता है।

आरोह – सा रे म रे प, म प नि सां।

अवरोह – सां नि प म रे, म रे नि़ सा।

पकड़ – रे प, म रे म रे नि़ सा रे, सा।

आलाप :–

1. सा, नि़ प नि़ सा , रे प म, रे म रे सा।
2. नि़ सा, रे म रे, प म प, नि़ म प म , म रे, म रे, नि़ सा रे सा।
3. सा रे म रे, नि़ सा रे, म रे, प, रे म रे, नि़ सा, नि़ प़, म़ प़ नि़ रे सा, रे सा।
4. म रे प, नि़ प, नि़ म प, रे म रे प म, नि़ प, म रे नि़ सा।
5. सा, प़ नि़ सा रे, म रे, प म रे म रे, प, म प नि़ सां, प नि़ सां रे, मं रें, मं रें, नि़ सां, नि़ प, नि़ म प, रे म रे, म रे, नि़ सा।

मसीतखानी ग़त – तीनताल

स्थाई

रेरे | प मम रे नि़सा

| रे रे सा नि़प़ | नि़ सासा रे मप | निमप मरे निसा मरे | नि़ सासा नि़ प़
× 2 0 3
| म़ प़ नि़ सासा | रे पप निमप मरे | निमप मरे नि़सा , |
× 2 0 3

अन्तरा

पप | म रेप म पनि

सा सा सा रेरे	सा निनि प मप	निमप मरे निसा
×	2	0 3

तोडे – चौगुन लयकारी

1 | निपनिसा रेरेसारे निसारे रेपपमरे | निमपपम पममरेम निसारेसा मुखडा
2

2 | रेनिसारे मसारेम रेपमरे पपमरे | मपनिसा निसानि रेरेमप मुखडा |
2 0

3 | रेरेनिप निसारेम रेपमप मपनिसां |
×

रेंरेंसांनि पनिमप रेमरेसा नि–मप
2

नि–मप नि–मप नि––– मुखडा
0

4 | सारेनिसा निरेसा– मपरेम रेपम– |
×

निमपम प–निसां रेंसांनिप मपमरे
2

सा–पनि रे–निसा रे––– सां–पनि
0

रे– निसा रे––– सा–पनि रे–निसा	रे
3	×

5 | ममरेनि सारेमप निनिपनि सांरेंनिसा |
×

रेंमंरेंसां निसारेंसां पनिमप रेमरेसा
2

निसारेसा रेमरेप मरेनिसा रे–रेम
0

रेपमरे निसारे– रेमरेप मरेनिसा	रे
3	×

तोडे – अठगुन लयकारी

6 | सारेसारेमरेपप रेमरेमरेपमप मरेपपमपनिसां पनिसांसांनिसारेंसां |
×
| मंमंरेंमंमंरेंसांसां रेंरेंसांरेंरेंसांनिसां सांसांनिसांसांनिपनि ममपममपरेम |
2
| पमरेमरेसारेनिसा निपमनिपमरेम रेपमपमरेनिसा रे–––निपमनि |
0
| पमरेमरेपमप मरेनिसारे––– निपमनिपमरेम रेपमपमरेनिसा | रे
3 ×

7 | रे–रेसानिसारेरे म–मरेपमपप नि–निसांनिसांरेंरं मं–मंरेंसांनिसांरेंमं |
×
| रेंमंरेंसां–निसां रेंसांरेंसांनिसांनि सांनिसांनिप–मप निपनिपम–रेम |
2
| रेसारेसारे–निसा रेपमपमरेनिसा रे––निसारे–निसा रे––––रेपमप |
0
| मरेनिसारे––निसा रे–निसारे–निसारे रेपमपमरेनिसा रे– निसारेनिसा | रे
3 ×

8 | निपमपमरेनिसा ––रेपमपमरे ––पमपमरेम ––रेपमपनिप |
×
| ––निपमपनिसां ––पनिसांरेंनिसां ––निसांरेंमंरेंसां ––मंरेंसांरेंनिसां |
2
| ––रेंरेंसांरेंनिसां ––सांसांनिसांपनि ––निनिपनिमप ––ममरेपमरे |
0
| सानिपनिसारेनिसा रे–––सानिपनि सारेनिसारे––– सानिपनिसारेनिसा | रे
3 ×

अभ्यास प्रश्न

1. मसीतखानी गत का परिचय दीजिए।
2. पाठ्यक्रम के किसी एक राग में मसीतखानी गत को तोडों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप मसीतखानी गत की स्वरलिपि को पढ़ सकेंगे एवं उनका क्रियात्मक रूप से वादन करने में सक्षम होंगे। फिरोज खॉ के पुत्र मसीत खॉ ने सितार वादन की एक शैली को विकसित किया जिसे मसीतखानी शैली कहते हैं। इसमें बजाई जाने वाली राग रचनाएँ मसीतखानी गत कहलाती हैं। पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत दी गई हैं। इन रागों का तोडों के द्वारा विस्तार भी किया गया है जिससे आप राग में अन्य तोडों को स्वयं बनाने में भी सक्षम होंगे।

1.6 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भातखण्डे, पं0 विष्णुनारायण, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग – 1,2,3,4,5 व 6, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. बसंत, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस ।
3. झा, पं0 रामाश्रय 'रामरँग', अभिनव गीतांजली।

1.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम के किन्हीं तीन रागों में मसीतखानी गत को तोडों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

इकाई 6 – पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत, स्थाई व अन्तरे के तोडे आदि को लिपिबद्ध करना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 रजाखानी गत का परिचय
2.4 पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत व तोड़े
2.4.1 राग मियां की तोडी
2.4.2 राग गांधारी
2.4.3 राग गुजरी तोडी
2.4.4 राग मियाँ मल्हार
2.4.5 राग दरबारी कान्हड़ा
2.4.6 राग भीमपलासी
2.4.7 राग मेघ मल्हार
2.5 सारांश
2.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.7 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रदर्शन कला–संगीत में स्नातकोत्तर, तृतीय सेमेस्टर (एम0पी0ए0एम0आई0–602) पाठ्यक्रम की छठी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप विद्वान संगीतज्ञों के महत्वपूर्ण योगदान तथा उनकी संगीत साधना के प्रति लगन एवं परिश्रम को जान चुके होंगे। आप भारतीय संगीत के ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे। आप मसीतखानी गत के बारें में भी जान चुके होंगे।

इस इकाई में पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत व तोडों को प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई में आपकी सुविधा के लिये रजाखानी गत की स्वरलिपियाँ प्रस्तुत की गई हैं।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप रजाखानी गत तथा तोड़ों को लिपिबद्ध कर सकेंगे और इन्हे पढ़कर क्रियात्मक रूप में प्रस्तुत कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

1. रजाखानी गत को स्वरलिपि के माध्यम से पढ़ एवं बजा सकेंगे।

2. स्वर को लिपिबद्ध कर सकेंगे तथा लिपिबद्ध स्वर को पढ़ सकेंगे।
3. तोड़ों के माध्यम से राग का प्रस्तार कर सकेंगे।
4. अन्य रागों में भी तोडे बनाने में सक्षम होंगे।

2.3 रजाखानी गत का परिचय

रजाखानी गत की रचना लखनऊ के रजा खॉ द्वारा हुई। रजाखानी गत भी सरल एवं आकर्षक होने के कारण ही लोकप्रिय हो गई। सेनिया घराने की द्रुत गतों का कठिन होना इस गत के लोकप्रिय होने का मुख्य कारण रहा। इसको पूरबी बाज भी कहा जाता है।

मसीतखानी एवं रजाखानी गतें अलग–अलग घरानों की होने पर भी अब क्रमशः विलम्बित व द्रुत गतों के रूप में लोकप्रिय होने के फलस्वरूप एक के पश्चात दूसरी बजायी जाती हैं।

रजाखानी गत के बोल – रजाखानी गत के बोल मसीतखानी गत की तरह निश्चित नहीं होते। दिर व द्रा जैसे द्रुत लय के बोल रजाखानी गत में राग–ताल बद्ध करके बजाये जाते हैं। इसका वादन मध्य अथवा द्रुत लय में होता है। इसमें स्थायी तथा अंतरा दो भाग होते हैं। रजाखानी बाज पर गायन, विशेष रूप से ठुमरी का प्रभाव देखा जाता है। रजाखानी गतों के आधार पर गायन की तराना शैली का प्रचार हुआ।

रज़ा खाँ साहब ने द्रुत गतों का निर्माण किया। द्रुत गत में मिज़राब व जवे के बोलों को गतों में प्रयोग किया, जो निम्न प्रकार हैं–

1. दा रद दा
2. दा दिर दा रा
3. दाऽ ऽर दाऽ ऽर दा
4. दिर दिर दार दार दा
5. दा दिर दा दिर दा रा दा रा

2.4 पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत व तोड़े

2.4.1 राग मियाँ की तोडी (तोडी) :–

रज़ाखानी गत – तीनताल

स्थाई

ग	रे	सा	नि़	ध़	नि	सा	रे	ग	–	मं	ग	रे–	रेसा	–नि़	सा
दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	रा	ग	–	दा	रा	दाऽ	रदा	ऽर	दा
0				3				×				2			
ध़	–	नि़	ध़	–	नि	सा	रे	गग	मंमं	ग	रे	ग–	सा–	नि़	सा
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	रा	दा	रा	दिर	दिर	दा	रा	दाऽ	राऽ	दा	रा
0				3				×				2			

अन्तरा

मं	मं	ग	मं	–	ध़	नि	नि	सां	–	सां	सां	गं–	गंरें	–रें	सां
दा	रा	दा	दा	ऽ	रा	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दाऽ	रदा	ऽर	दा

0				3				×				2			
गं	–	रें	सां	–	नि	ध	प	ग	मंमं	पप	मंमं	ग–	गरे	–रे	सा
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	रा	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दा
0				3				×				2			

तोड़े(4 मात्रा) :–

1	धध	पमं	गग	रेसा	
	2				0
2	मंध	निमं	गरे	सासा	
	2				0

तोड़े (8 मात्रा) :–

3	निरे	गमं	धनि	सांनि	धम	मंग	रेग	रेसा
	×				2			
4	गरे	गमं	धनि	धमं	धमं	गमं	गरे	सासा
	×				2			
5	गमं	धमं	रेग	मंध	पमं	गरे	गरे	सा–
	×				2			
6	निसां	रेंध	निसां	मंध	निध	मंग	रेग	रेसा
	×				2			

तोड़े(12 मात्रा) :–

7	गरे	सारे	मंग	रेग	निध	मंध	सांनि	धनि
	3				×			
	धमं	गमं	गरे	सा–				
	2				0			
8	सारे	गरे	गमं	धमं	धनि	सांनि	रेंसां	निसां
	3				×			
	निध	मंग	रेग	रेसा				
	2				0			
9	मंग	रेसा	रेग	मंध	निध	मंग	मंध	निसां
	3				×			
	निध	पमं	गरे	सा–				
	2				0			

तोड़े (16 मात्रा) :–

10	सानि	धनि	धनि	सारे	रेसा	निसा	निसा	रेग
	0				3			
	गरे	सारे	सारे	गमं	पमं	गमं	गरे	सा–
	×				2			
11	गग	रेसा	मंमं	गरे	धध	मंग	निनि	धम
	0				3			
	गंगं	रेंसां	निनि	धमं	गमं	गरे	गरे	सा–
	×				2			

12	गग	रेसा	रेसा	निसा	निनि	धमं	धमं	धनि
	0				3			
	गंगं	रेंसां	रेंसां	निसां	निनि	धमं	गरे	सा–
	×				2			

2.4.3 राग गान्धारी :–

रज़ाखानी गत – तीनताल

स्थाई

सा	रेरे	म	प	–	म	प	नि	ध	–	म	प	ग–	गरे	–रे	सा
0				3				×				2			
रे	सा	रे	म	प	धध	नि	सां	ध	म	प	मप	ग–	गरे	–रे	सा
0				3				×				2			

अन्तरा

म	म	प	ध	–	ध	नि	नि	सां	–	सां	सां	गं	रें	सां	सां
0				3				×				2			
सां	रें	मं	गं	रे	रें	सां	सां	ध	–	म	प	ग–	गरे	–रे	सा
0				3				×				2			

तोड़े(4 मात्रा) :–

1	निध	पम	गरे	सा–	0
	2				
2	पध	मप	गरे	रेसा	0
	2				
3	रेम	पग	मरे	सा–	0
			2		
4	रेम	पनि	धप	मगरेसा	0
			2		

तोड़े(8 मात्रा) :–

5	सारे	मप	धनि	धप	धम	पग	रेरे	सा–
	×				2			
6	रेम	पध	निसां	निध	पध	मप	गरे	सा–
	×				2			
7	मप	धनि	सारें	सांनि	धप	मप	गरे	सा–
	×				2			
8	निध	पध	मप	धप	धम	पग	गरे	सा–
	×				2			
9	सारे	निसा	रेम	पध	निध	पम	गरे	सा–
	×				2			

तोड़े(16 मात्रा) :–

10	सारे	मप	रेम	पध	मप	धनि	सारें	सांनि	
	×				2				
	धनि	धप	मग	रेसा	मप	धप	ध–	ध–	ध
	0				3				×
11	मग	रेसा	रेम	पध	निध	पम	गरे	मप	
	×				2				
	सां–	पप	ध–	सां–	पप	ध–	सां–	पप	ध
	0				3				×

2.4.4 राग गुर्जरी तोडी :–

रज़ाखानी गत – तीनताल

स्थाई

												रे	ग	मं	मं
ध	–	नि	ध	मं	धध	मं	ग	रे	ग	रे	सा	ध़	नि़	ध़	रे
×				2				0				3			
ग	–	रे	सा	मं	धध	म	ग	रे	ग	रे	सा				
×				2				0				3			

अन्तरा

												मं	ग	मं	ध
सां	–	नि	ध	रें	गं	रें	सां	ध	नि	सां	सां	रें	ग	रे	सा
×				2				0				3			
नि	रें	नि	ध	मं	धध	मं	ग	रे	ग	रे	सा				
×				2				0				3			

तोड़े(4 मात्रा) :–

1	धमं	गमं	गरे	सा–
	0			
2	धध	मंध	मंग	रेसा
	0			

तोड़े(8 मात्रा) :–

3	धमं	धमं	गमं	धमं	धमं	गमं	गरे	सा
	2				0			
	मंध	मंध	गमं	गमं	रेग	रेग	मंमं	ध–
	2				0			
4	गरे	सारे	धमं	गमं	धध	मंध	मंग	रेसा
	2				0			

तोड़े(12 मात्रा) :–

5	गरे	सारे	म॑ग	रेग	निध	म॑ध	सांनि	धनि
	3				×			
	धम॑	गम॑	गरे	सा–				
	2				0			
6	सारे	गरे	गम॑	धम॑	धनि	सांनि	रेंसां	निसां
	3				×			
	निध	म॑ग	रेग	रेसा				
	2				0			
7	म॑ग	रेसा	रेग	म॑ध	निध	म॑ग	म॑ध	निसां
	3				×			
	निध	पम॑	गरे	सा–				
	2				0			

तोड़े(16 मात्रा) :–

8	धध	म॑ध	म॑ग	रेसा	सारे	सारे	गम॑	गरे
	3				×			
	धम॑	गरे	सांध	म॑ग	रेसा	धम॑	गरे	सा–
	2				0			
9	म॑म॑	धध	म॑म॑	गग	रेरे	गग	म॑म॑	धध
	3				×			
	निनि	धध	म॑म॑	गग	म॑म॑	गग	रेग	रेसा
	2				0			
10	सारे	गम॑	रेग	रेसा	रेग	म॑ध	म॑ध	म॑ग
	3				×			
	गम॑	धध	म॑ध	निनि	धध	म॑ध	म॑ग	रेसा
	2				0			
11	सांनि	धनि	धम॑	धध	गम॑	धध	म॑ध	निनि
	3				×			
	म॑ध	धध	म॑नि	निनि	धम॑	गग	रेरे	सासा
	2				0			
12	रेंरें	सांसां	निनि	धध	म॑ध	म॑नि	धनि	धसा
	3				×			
	सांनि	सांनि	धनि	धम॑	गम॑	धध	म॑म॑	गग
	2				0			

सम से सम तक :–

13	सारे	गम॑	रेग	म॑ध	गम॑	धनि	म॑ध	निसां
	×				2			
	निनि	धनि	धम॑	गम॑	धम॑	धध	म॑ध	धम॑
	0				3			

14 | गग रेसा मंमं गमं | धध मध निनि धनि |
× 2
| मंध मंग रेग रेसा | मंमं धमं मंध मंमं |
0 3

15 | गरे सागं रेसा निसा | मंग मंग रेग सारे |
× 2
| धमं गरे गरे सा– | मंध धमं धध मंध |
0 3

16 | सारे गग रेग मंमं | गमं धध मंध निनि |
× 2
| धनि धमं धमं गमं | मंध मंग रेग मंमं |
0 3

2.4.5 राग मियाँ मल्हार :–

रज़ाखानी गत – तीनताल

स्थाई

ग म रे सा | – नि़ म़ प़ |

| नि – – ध | नि नि सा सा, | रे रे प प | नि ध नि सां |
× 2 0 3
| नि प म प | ग ग रे सा | | |
× 2 0 3

अन्तरा

म म प प | नि ध नि नि

| सा – सा सा | नि़ रे सा सां | गं मं रें सां | नि नि म प |
× 2 0 3
| नि – – ध | नि नि सा सा, | | |
× 2 0 3

तोड़े(4 मात्रा) :–

1 | निप मप गम रेसा |
0
2 | मम पप गम रेसा |
0
3 | पग मप गम रेसा |
0

तोड़े(8 मात्रा) :–

4 | गम रेसा नि़सा रेसां | निध़ निनि़ सारे नि़सा |
× 2

5 | गग मम रेरे सासा | निप मप गम रेसा |
× 2

6 | रेप मप गम रेसा | प– गम रेसा नि़सा |
× 2

7 | निसां रेंसां निप मप | रेप गम रेसा नि़सा |
× 2

8 | रेप मप गम रेसा | पग मप गम रेसा |
× 2

9 | निध़ निनि़ सारे नि़सा | रेप मप गम रेसा |
× 2

तोड़े(16 मात्रा) :–

10 | निध़ नि़सा रेसा नि़सा | रेप मप गम रेसा |
0 3

| रेप मप निध़ नि़सा | मप गम रेसा नि़सा |
× 2

11 | मम रेप मप निध | निसां रेंसां निध निसां |
0 3

| रेंरें सांरें निसां निध | निसां निप गम रेसा |
× 2

तोड़े (32 मात्रा) :–

12 | रेरे सारे रेसा नि़सा | मम रेम मरे नि़सा |
× 2

| निनि पनि निप मप | मम रेरे सारे नि़सा |
0 3

| निप मप गम रेसा | नि़– –– निप मप |
× 2

| गम रेसा नि़– –– | निप मप गम रेसा | नि़
0 3 ×

13 | रेम रेम रेसा नि़सा | मप मप निप मप |
× 2

| निसां निसां रेंसां निसां | निध निप गम रेसा |
0 3

| मप मप गम रेसा | नि़– –– मप मप |
× 2

| गम रेसा नि़– –– | मप मप गम रेसा | नि़
0 3 ×

14	पप	गम	रेसा	निनि	मप	गम	रेसा	सांसां	
	×				2				
	निध	निसां	निप	मप	निप,	मप	गम	रेसा	
	0				3				
	नि़–	रेसा	नि़–	––	मप	गम	रेसा	नि़–	
	×				2				
	रेसा	नि़–	––	मप	गम	रेसा	नि़–	रेसा	नि़
	0				3				×
15	मम	गम	रेसा	नि़सा	पप	मप	गम	रेसा	
	×				2				
	निनि	मप	निध	निसां	निसां	रेंमं	रेंसां	निसां	
	0				3				
	गंमं	रेंसां	निध	निसां	निप	मप	गम	रेसा	
	×				2				
	रेसा	नि़सा	नि़–	रेसा	नि़सा	नि़–	रेसा	नि़सा	नि़
	0				3				×
16	सांरें	सांनि	सांनि	धनि	पम	गम	रेप	मप	
	×				2				
	निध	निसां	रेंसासं	निसां	निम	पग	मरे	सा–	
	0				3				
	रेप	मग	मरे	नि़सा	नि़–	––	रेप	मग	
	×				2				
	मरे	नि़सा	नि़–	––	रेप	मग	मरे	नि़सा	नि़
	0				3				×

2.4.6 राग दरबारी कान्हडा :–

रजा़खानी गत – तीनताल

स्थाई

रे	रे	सा	ध़	–	नि़	सा	रे	ग	–	ग	म	रे–	रेसा	–नि़	सा
×				2				0				3			
नि़	सा	रे	रे	ग	–	म	प	ग	–	ग	म	रे–	रेसा	–नि़	सा
×				2				0				3			

अन्तरा

म	म	प	ध	–	नि़	सा	नि	सां	–	रें	रें	गं	मं	रें	सां
×				2				0				3			
नि	सां	रें	ध	नि	सां	नि	प	ग	–	ग	म	रे–	रेसा	–नि़	सा
×				2				0				3			

तोड़े(4 मात्रा) :–

1	गम	रेसा	धनि	सां	|
	2				
2	मप	धनि	पम	गम	|
	2				
3	पनि	मप	गम	रेसा	|
	2				

तोड़े(6 मात्रा) :–

4	निप	मप	गम	रेसा	धनि	रेसा	|
			2				
5	मप	धनि	प–	मप	गम	रेसा	|
			2				

तोड़े(8 मात्रा) :–

6	सारे	ग–	मप	ध–	निप	मप	गम	रेसा	|
	×				2				
7	सारे	गम	प–	मप	धनि	पम	गम	रेसा	|
	×				2				
8	मप	धनि	सा–	धनि	प–	मप	गम	रेसा	|
	×				2				

तोड़े(16 मात्रा) :–

9	धनि	सारे	गम	रेसा	मप	धनि	सारें	निसा	|
	0				3				
	धनि	प–	मप	गम	रेसा	निसा	धनि	सा–	|
	×				2				
10	गम	रेसा	मप	धनि	सारें	सां–	निसां	रेंसां	|
	0				3				
	धनि	सारें	निसां	निप	मप	गम	रेसा	निसा	|
	×				2				
11	निसा	रेंसां	धनि	मप	धनि	सांध	निप	मप	|
	0				3				
	मप	धनि	पग	मरे	प–	गम	रेसा	निसा	|
	×				2				

तोड़े(32 मात्रा) :–

12	गम	गम	रेसा	निसा	मप	मप	गम	रेसा	
	×				2				
	धनि	सांध	निप	मप	गम	गम	रेरे	सा–	
	0				3				
	गम	रेसा	रे–	सारे	ग–	––	गम	रेसा	
	×				2				
	रे–	सारे	ग–	––	गम	रेसा	रे–	सारे	ग
	0				3				×
13	धनि	साध	निसा	रेसा	पध	निप	धनि	मप	
	×				2				
	निसा	रेंनि	सारें	निसां	धनि	मप	गम	रेसा	
	0				3				
	मप	धनि	सां–	सारे	ग–	––	मप	धनि	
	×				2				
	सां–	सारे	ग–	––	मप	धनि	सां–	सारे	ग
	0				3				×
14	सारे	सारे	गम	प–	मप	मप	धनि	सां–	
	×				2				
	निसां	निसां	धनि	प–	मप	मप	गम	रेसा	
	0				3				
	सारे	सारे	ग–	सारे	ग–	––	सारे	सारे	
	×				2				
	ग–	सारे	ग–	––	सारे	सारे	ग–	सारे	ग
	0				3				×

2.4.11 राग भीमपलासी :–

रज़ाखानी गत – तीनताल

स्थाई

													ग	म	प	नि
ध	–	प	–	ग	म	प	म	ग	रे	सा	–,	रे	नि़	सा	म	
×				2				0				3				
म	–	म	ग	ग	म	प	म	ग	रे	सा,						
×				2				0				3				

अन्तरा

													ग	म	प	नि
सा	–	सा	सा	प	नि	सा	गं	रें	सां	नि	सां	प	नि	सां	नि	
×				2				0				3				
ध	–	प	–	ग	म	प	म	ग	रे	सा	–					
×				2				0				3				

तोड़े(4 मात्रा) :—

1	निसा 0	गरे	सारे	निसा
2	गम 0	पम	गरे	सा—
3	पम 0	गम	गरे	सा—
4	निसा 0	गम	पम	प—

तोड़े(8 मात्रा) :—

5	गम 2	पम	गम	गरे	सारे 0	निसा	गम	प—
6	पग 2	मप	गम	पम	निसा 0	गरे	निसा	गम
7	निध 2	पध	मप	गम	पम 0	गम	पनि	सा—
8	गग 2	रेसा	निनि	धप	निध 0	पम	गरे	सा—
9	साम 2	गम	पम	गम	पनि 0	धप	मग	रेसा
10	निसा 2	गरे	सारे	निसा	गम 0	पनि	धप	मग

तोड़े(16 मात्रा) :—

11	गम 3	पम	पम	गम	पनि ×	धप	मध	प—
	पनि 2	सांरें	सांरें	सांनि	धप 0	मग	मग	रेसा
12	गग 3	रेसा	निध	पनि	पनि ×	साग	रेसा	निसा
	गम 2	पम	गम	पम	निध 0	पम	गरे	सा—
13	सारे 3	निसा	गम	पम	पम ×	गम	गरे	सा—
	पनि 2	सांरें	सांनि	धप	धप 0	मप	मग	रेसा
14	रेनि 3	साम	गरे	सा—	गम ×	पम	गरे	सा—
	गम 2	पनि	धप	मप	मम 0	गम	गरे	सा—

2.4.13 राग मेघमल्हार :–

रज़ाखानी गत – तीनताल

स्थाई

												नि़	प़	नि़	सा
रे	–	म	प	रे	प	म	रे	नि़	रे	सा	–,	रे	–	म	प
×				2				0				3			
नि	–	म	प	रे	प	म	रे	नि़	रे	सा	–				
×				2				0				3			

अन्तरा

												म	प	नि	नि
सां	–	नि	सां	नि	सां	रें	सां	नि	म	प	–	नि़	सा	रे	प
×				2				0				3			
म	रे	नि	सा	रे	प	म	रे	नि	रे	सा	–				
×				2				0				3			

तोड़े(4 मात्रा) :–

1	निनि	पम	रेसा	नि़सा
	0			
2	प़नि़	सारे	नि़रे	सा–
	0			
3	रेप	मरे	नि़रे	सा–
	0			
4	सानि	पम	रेसा	निसा
	0			

तोड़े(8 मात्रा) :–

5	रेप	मरे	मरे	सारे	निनि	पम	रेसा	नि़सा
	2				0			
6	पप	मप	निनि	पम	सांनि	पम	रेसा	नि़सा
	2				0			
7	पम	निप	मप	निप	नि़सा	रेम	पनि	प–
	2				0			
8	सांनि	पनि	पम	पम	रेम	पम	मरे	सा–
	2				0			
9	निप	पम	रेप	मरे	निनि	पम	रेसा	नि़सा
	2				0			

तोड़े(16 मात्रा) :–

10	प़नि़	सारे	नि़सा	रेसा	रेप	मरे	सारे	नि़सा	|
	3				×				
	निप	निसां	रेंसां	निसां	रेप	मरे	सारे	नि़सा	|
	2				0				
11	रेरे	पप	मम	रेरे	निनि	पप	सासा	निनि	|
	3				×				
	सासा	निनि	पप	मम	रेप	मरे	नि़रे	सा–	|
	2				0				
12	रेरे	मम	रेरे	पप	निनि	पम	निनि	सासा	|
	3				×				
	रेंरें	सांसां	निनि	पम	सांनि	पम	रेसा	नि़सा	|
	2				0				
13	प़नि़	सारे	नि़सा	रेम	रेप	मरे	मप	नि़सा	|
	3				×				
	नि़सा	सारे	सारे	नि़सा	नि़सा	रेनि	सारे	नि़सा	|
	2				0				
14	सासा	रेरे	रेरे	मम	रेरे	पप	निनि	मम	|
	3				×				
	पप	निनि	रेंरें	सांसां	निप	मरे	नि़रे	सा–	|
	2				0				

तोडे सम से :–

15	नि़सा	रेसा	रेम	पम	पनि	पम	पनि	सांरें	|
	×				2				
	सांरें	सांरें	निसां	निप	निप	मप	मरे	सा–	|
	0				3				
	नि़सा	रेप	म	–	नि़सा	रेप	म	–	|
	×				2				
	नि़सा	रेप	म	–	मुखड़ा				
	0				3				
16	रेप	मरे	रेप	मरे	पप	मरे	मम	रेसा	|
	×				2				
	निप	निसां	रेंसां	निसां	निप	मप	मरे	सा–	|
	0				3				
	निप	मरे	सा	–	निप	मरे	सा	–	|
	×				2				
	निप	मरे	सा	–	मुखड़ा				
	0				3				
17	सारे	नि़सा	रेप	मरे	पनि	पम	पनि	सांरें	|
	×				2				
	रेंरें	सांरें	निसां	निप	मप	पप	मप	पम	|
	0				3				

अभ्यास प्रश्न

1. रजाखानी गत का परिचय दीजिए।
2. पाठ्यक्रम के किसी एक राग में रजाखानी गत को तोडों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप रजाखानी गत की स्वरलिपि को पढ़ सकेंगे एवं उनका क्रियात्मक रूप से वादन करने में सक्षम होंगे। पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत दी गई हैं। इन रागों का तोडों के द्वारा विस्तार भी किया गया है जिससे आप राग में अन्य तोडों को स्वयं बनाने में भी सक्षम होंगे।

2.6 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भातखण्डे, पं0 विष्णुनारायण, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग – 1,2,3,4,5 व 6, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. बसंत, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
3. झा, पं0 रामाश्रय 'रामरँग', अभिनव गीतांजली।

2.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम के किन्ही तीन रागों में रजाखानी गत को तोडों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

इकाई 7 – पाठ्यक्रम की तालों का परिचय व तालों के ठेकों को लयकारी (दुगुन, तिगुन, चौगुन, आड, कुआड व बिआड) सहित लिपिबद्ध करना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उदेद्श्य

3.3 तालों का परिचय

- 3.3.1 पंचमसवारी ताल का परिचय
- 3.3.2 दीपचन्दी ताल का परिचय
- 3.3.3 तीवरा ताल का परिचय
- 3.3.4 शिखर ताल का परिचय

3.4 तालों को लयकारीयों में लिखना

- 3.4.1 पंचमसवारी ताल में लयकारी
- 3.4.2 दीपचन्दी ताल में लयकारी
- 3.4.3 तीवरा ताल में लयकारी
- 3.4.4 शिखर ताल में लयकारी

3.5 सारांश

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रदर्शन कला–संगीत में स्नातकोत्तर, तृतीय सेमेस्टर (एम0पी0ए0एम0आई0–602) पाठ्यक्रम की सातवी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप पाठ्यक्रम के रागों में मसीतखानी गत को लिपिबद्ध करना सीख चुके होंगे। आप पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत को भी लिपिबद्ध करना सीख चुके होंगे।

इस इकाई में पाठ्यक्रम की तालों का परिचय व उनके ठेकों को विभिन्न लयकारी (दुगन, तिगुन, चौगुन, आड, कुआड व बिआड) में लिपिबद्ध करने के विषय में बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप पाठ्यक्रम की तालों के ठेकों एवं उनको विभिन्न लयकारी में लिपिबद्ध करने के विषय में जान चुके होंगे। इससे आप लयकारी को बोलने एवं बजाने में भी सक्षम होंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात :–

1. आपको लयकारी का ज्ञान होगा ।
2. आप तबले की ताल के ठेकों को विभिन्न लयकारी में लिपिबद्ध करने एवं उसके क्रियात्मक स्वरूप को तबले में प्रस्तुत कर पाएंगे।
3. आप लयकारी का प्रयोग अपने वादन(एकल वादन, संगत) करने में सक्षम होंगे जिससे आप का वादन प्रभावशाली होगा।

3.3 तालों का परिचय

3.3.1 पंचमसवारी ताल का परिचय :–

परिचय – इस ताल को सिर्फ सवारी ताल के नाम से भी जाना जाता है। यह सवारी ताल के प्रकारों में से एक है। 'भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन' के लेखक डॉ0 अरूण कुमार ने 18 प्रकार की सवारी बताई हैं – कैद सवारी, कुर्क सवारी, तृतीय सवारी, चतुर्थ सवारी, पंचम सवारी, षष्ठ सवारी, सप्तम सवारी, चंपक सवारी, शेर की सवारी, बड़ी सवारी, मर्दानी सवारी, जनानी सवारी, सीता सवारी, छोटी सवारी, बसारी सवारी और मंजरी सवारी आदि। किन्तु किसी भी ग्रन्थ में पंचमसवारी, जिसे सवारी के नाम से भी जाना जाता है को छोड़कर अन्य किसी भी सवारी के प्रकारों का विशेष उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। विषम ताल होने के कारण इसकी गिनती कठिन तालों में की जाती है। यह तीनताल, एकताल, झपताल आदि तालों की अपेक्षा कम लोकप्रिय है। शास्त्रीय संगीत की विलम्बित की रचनाओं के साथ पंचम सवारी प्रयोग की जाती है। पंचमसवारी द्रुत व अति द्रुत लय में भी बजाई जाती है अतः इसका प्रयोग गायन में द्रुत ख्याल व वादन में द्रुत गत में किया जाता है। तबले पर एकल वादन हेतु भी इसका प्रयोग किया जाता है। इस ताल में उठान, पेशकार, कायदे, रेला, गत, परन, चक्करदार, टुक्डे, तिहाईयां आदि बजाए जाते हैं।

पंचमसवारी के ठेके के भिन्न–भिन्न प्रकार मिलते हैं। यह चार विभाग की 15 मात्रा की विषम पदीय ताल है। इसमें पहले विभाग में तीन एवं अन्य विभाग चार चार मात्राएं हैं।

मात्रा – 15, विभाग – 4, ताली – 1, 4 व 12 पर, खाली – 8 पर

ठेका

धि	ना	धिधि	कत	धिधि	नाधि	धिना	तीक	तीना	तिरकिट	तूना
×			2				0			

कता	धिधि	नाधि	धिना	धि
3				×

3.3.2 दीपचन्दी ताल का परिचय :–

परिचय – दीपचन्दी ताल को चांचर के नाम से भी जाना जाता है। मुख्यतः इसका प्रयोग उपशास्त्रीय संगीत या सुगम संगीत में किया जाता है। इस कारण ये ताल तबले के साथ–साथ ढ़ोलक, नाल, नक्कारा आदि अवनद्य वाद्यों पर भी बजाया जाता है। दीपचन्दी ताल में अधिक वादन सम्भव ना होने के कारण इसका प्रयोग एकल वादन हेतु नहीं किया जाता है। इसका वादन तीनों लयों – विलम्बित, मध्य व द्रुत लय में किया जाता है। उपशास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत इसका मुख्य प्रयोग होली व विलम्बित लय के ठुमरी गायन की संगति के लिए किया जाता है। इस ताल में लग्गी–लड़ी का प्रयोग बहुतायत में होता है।

यह चौदह मात्रा की ताल है। 14 मात्राएं 3/4/3/4 विभाग में विभाजित हैं। अतः इसे मिश्र जाति की अर्द्ध समपदीय ताल कहते हैं। इसमें पहला एवं तीसरा विभाग तीन–तीन मात्रा एवं दूसरा एवं चौथा विभाग चार–चार मात्रा का है। पहली, चौथी एवं ग्यारवीं मात्रा पर ताली एवं आठवीं मात्रा पर खाली है।

मात्रा – 14, विभाग – 4, ताली – 1, 4 व 11 पर, खाली – 8 पर

ठेका

धा	धिं	ऽ	धा	धा	तिं	ऽ	ता	तिं	ऽ	धा	धा	धिं	ऽ	धा
×			2				0			3				×

3.3.3 तीवरा ताल का परिचय :–

परिचय – इसे तीव्रा या तेवरा नाम से भी जाना जाता है। कुछ विद्वान इसे गीतांगी भी कहते हैं। वैसे तो यह पखावज के महत्वपूर्ण तालों में से एक है किन्तु इसे तबले पर भी बजाया जाता है। तीवरा ताल की संरचना रूपक ताल की भांति है। यह दक्षिण भारतीय संगीत की मिश्र जाति के त्रिपुट ताल के समान है। पखावज पर एकल वादन में तथा गायन में इसका प्रयोग ध्रुपद शैली की मध्य एवं द्रुत लय की रचनाओं के साथ किया जाता है। इसमें परन, टुक्ड़े, तिहाईयाँ आदि रचनाएं बजाई जाती हैं। तबले पर इसका प्रयोग ध्रुपद अंग की गायकी के साथ खुले अंग के रूप में किया जाता है। इसे विलम्बित लय में प्रयोग करने का प्रचलन नहीं हैं।

यह एक विषमपदीय ताल है। इसमें 7 मात्राएं होती हैं जो 3/2/2 – कुल 3 विभागों में बँटी होती हैं। पहले विभाग में तीन तथा दूसरे व तीसरे में दो–दो मात्राएं होती हैं। इसकी पहली, चौथी व छठी मात्रा पर ताली होती है। इसमें खाली नहीं होती है।

मात्रा – 7, विभाग – 3, ताली – 1, 4 व 6 पर

ठेका

धा	दीं	ता	| तिट	कत	| गदि	गन	| धा
×			| 2		| 3		| ×

3.3.4 शिखर ताल का परिचय :–

परिचय – शिखर ताल पखावज की प्राचीन व अप्रचलित तालों में से एक है। वर्तमान समय में यह प्रायः लुप्त सी हो गई है। इसका प्रयोग ध्रुपद गायन शैली में संगत के लिए तथा पखावज पर एकल वादन हेतु किया जाता है। मुख्यतः इसका प्रयोग मध्य व द्रुत लय में होता है।

17 मात्रा वाला यह ताल विषम पदीय है। इसमें कुल 5 विभाग होते हैं जो 4/4/3/2/4 में विभाजित हैं। पहले व दूसरे विभाग में चार–चार, तीसरे में 3, चौथी में दो तथा पाचवीं में चार मात्राएं हैं। इसकी पहली, पाँचवीं, नौवीं, बाहरवीं व चौदवीं मात्रा पर ताली है।

मात्रा – 17, विभाग – 5, ताली – 1, 5, 9, 12 व 14वीं पर

ठेका

ध	त्र	धि	न	| थ	ग	धि	न	| धु	कि	त	| धेत्	त	| ति	क	गदि	ग	| ध
ा	क	न	क	| ुं	ा	न	क	| म	ट	क	| त	ा	| ट	त	द	न	| ा
×				| 2				| 3			| 4		| 5				| ×

3.4 तालों को लयकारीयों में लिखना

लयकारी – समय की समान गति को लय कहते हैं। दो मात्राओं की क्रिया के मध्य होने वाला विश्रांति काल ही लय है और जब यह काल प्रयोग होने वाली मात्राओं के बीच समान रहता है तो वह निश्चित लय का स्वरूप ले लेता है। अतः लय का सम्बन्ध मात्रा एव मात्राओं के बीच के समय से है।

लय सामान्य रूप से तीन प्रकार की मानी गई है। विलम्बित, मध्य एवं द्रुत लय। काल के लम्बा होने पर विलम्बित लय स्थापित होती है। इस काल के कम होने पर मध्य लय एवं उससे अधिक कम होने पर द्रुत लय हो जाती है। सामान्य रूप से मध्य लय का विश्रांति समय विलम्बित लय के विश्रांति समय का आधा होता हैं एवं द्रुत लय का विश्रांति मध्य लय में विश्रांति समय का आधा होता है। संगीत में यह मान्यता स्थापित हो चुकी है एवं प्रचलन में है। विलम्बित लय को आधार लय मानने से मध्य लय का प्रयोग विलम्बित लय में दो बार एवं द्रुत लय का प्रयोग चार बार

करने की आवश्यकता होगी अतः मध्य लय विलम्बित लय की दुगुनी, द्रुत लय मध्य लय की दुगुन होती है। लय का यही प्रयोग लयकारी कहलाता है। एक मात्रा में एक से अधिक मात्राओं का आधार लय के साथ प्रयोग लयकारी कहलाता है।

संगीत में विभिन्न लयकारी जैसे दुगुन, तिगुंन, चौगुन, आड, कुआड, एवं बिआड प्रयोग की जाती है।

दुगुन – एक मात्रा में दो मात्रा 1 2 1 2

तिगुन – एक मात्रा में तीन मात्रा 1 2 3 123

चौगुन – एक मात्रा में चार मात्रा 1234 1234

आड – एक मात्रा में डेढ़ मात्रा अथवा दो मात्रा में तीन मात्रा, आड लयकारी कहलाती है। इसे चयोडी लय भी कहा जाता हैं एवं इसको 3/2 की लयकारी के रूप में भी व्यक्त करते हैं। 1 S 2 S 3 S

कुआड– इस लयकारी के विषय में दो मत हैं पहला– आड की आड को कुआड कहते हैं अतः 9/4 जिसके अनुसार चार मात्रा में नौ मात्रा अथवा एक मात्रा में $2\frac{1}{4}$ अथवा सवा दो मात्रा का प्रयोग करते हैं। दूसरा – 5/4 की लयकारी अर्थात चार मात्रा में पांच मात्रा अथवा एक मात्रा में सवा मात्रा। इस दूसरे मत का अधिक प्रचलन है एवं इसको सवागुन की लय भी कहते हैं।

पहले मत के अनुसार–:

1S S S 2S S S 3 S S S 4 SS S 5 S S S 6 S S S 7 S S S 8 S S S 9 S S S

1 2 3 4

दुसरे मत के अनुसार–:

1 S S S 2 S S S 3 S S S 4 S S S 5 S S S

1 2 3 4

बिआड लय–

इस लयकारी के विषय में भी दो मत हैं। एक मत के अनुसार कुआड लय की आड बिआड लयकारी होती जिसे $9/4 \times 3/2 = \frac{27}{8}$ के रूप में व्यक्त करते हैं एवं दूसरे मत के अनुसार $7/4$की लयकारी बिआड की लयकारी है। इसमें एक मात्रा में पौने दो गुन मात्रा प्रयोग की जाती है जिसे पौने दो गुन की लयकारी भी कहते हैं।

पहले मत के अनुसार :–

1S S S S S S S 2 S S S S S S S 3 S S S S S S S 4 S S

S S S S S 5 S S S S S S S 6 S S S S S S S 7 S S S S S

S S 8 S S S S S S S 9 S S S S S S S S 10 S S S S S S S 11

S S S S S S S 12 S S S S S S S S 13 S S S S S S S S 14 S S S

S S S S 15 S S S S S S S S 16 S S S S S S S S 17 S S S S S

S S 18 S S S S S S S S 19 S S S S S S S S 20 S S S S S S S S 21 S

S S S S S S 22 S S S S S S S S 23 S S S S S S S S 24 S S S S

S S S 25 S S S S S S S S 26 S S S S S S S S 27 S S S S S S S

दूसरे मत के अनुसार :–

1 S S S 2 S S S 3 S S S 4 S S S 5 S S S 6 S S S 7 S S S

कुआड एवं बिआड में दूसरा मत ही अधिक प्रचलित एवं व्यवहारिक है अतः लयकारी लिपिबद्ध करने में दूसरे मत का ही प्रयोग करेंगे। आड, कुआड एवं बिआड, लयकारी लिखने के लिए इनकी भिन्न अथवा बटे में दिखाई संख्या से भाग देते हैं। गणित के अनुसार भाग देने में बटे की संख्या उलटी हो कर गुणा में बदल जाती है।

उदाहरण आड को बट्टा संख्या $3/2 = 1\frac{1}{2}$

आड लयकारी की मात्रा संख्या = ताल की मात्रा × $2/3$, किस मात्रा से आरम्भ की जानी है, इसके लिए उपर की संख्या को ताल की मात्रा संख्या से घटाते हैं।

ताल की मात्रा संख्या – ताल की भाग संख्या × $2/3$ जो लयकारी लिखनी है। उसमें बट्टा के नीचे वाली राशी में से एक घटाकर उतनी संख्या के अवग्रह लगाते हैं।

उदाहरण– आड की लयकारी – $^{3}/_{2} = \xrightarrow{2-1} = 1$

कुआड की लयकारी – $^{5}/_{4} = \xrightarrow{4-1} = 3$

बिआड की लयकारी – $^{7}/_{4} = \xrightarrow{4-1} = 3$

अतः आड की लयकारी को मात्रा के साथ एक अवग्रह, कुआड एवं बिआड की लयकारी में तीन अवग्रह लगाते हैं। इसके पश्चात बट्टा की उपर वाली राशि में विभाग बना लेते हैं। सरलता के लिए पीछे से विभाग बनाना शुरू करते हैं एवं पहली मात्रा में जितनी मात्रा कम होती है, मात्रा से पहले उतने अवग्रह लगा देते हैं जो कि आप विभिन्न तालों में लयकारी के उदाहरण से समझेंगे।

3.4.1 पंचमसवारी ताल में लयकारी :–

पंचमसवारी ताल

मात्रा – 15, विभाग – 4, ताली – 1, 4 व 12 पर, खाली – 8 पर

ठेका

धि ना धिधि	कत धिधि नाधि धिना	तीक तीना तिरकिट तूना
×	2	0

कता धिधि नाधि धिना	धि
3	×

पंचमसवारी ताल की दुगुन :–

धीना धीधीक त	धीधीनाध ी	धीनातीक	तीनातिरकि ट	तूनाकत्ता	धीधीनाध ी
×		2			

धीनाध ी	नाधीधी	कत्तधीधी	नाधीधीन ा	तीकतीना	तिरकिटतून ा	कत्ताधीध ी	नाधीधीन ा	धि ा
0				3				×

पंचमसवारी ताल की दुगुन एक आवर्तन में :–

1 धी नाधीधी	कत्तधीधी	नाधीधीना	तीकतीना	तिरकिटतूना	कत्ताधीधी	नाधीधीना	धि
0			3				×

पंचमसवारी ताल की तिगुन :–

धीनाधीधी	कतधीधीनाधी	धीनातीक्रतीना	तिरकिटतूनाकत्ता	धीधीनाधीधीना
×			2	

धीनाधीधी	कत्तधीधीनाधी	धीनातीक्रतीना	तिरकिटतूनाकत्ता	धीधीनाधीधीना
		0		

धीनाधीधी	कतधीधीनाधी	धीनातीक्रतीना	तिरकिटतूनाकत्ता	धीधीनाधीधीना	धि
	3				×

पंचमसवारी ताल की तिगुन एक आवर्तन में :–

धीनाधीधी	कतधीधीनाधी	धीनातीक्रतीना	तिरकिटतूनाकत्ता	धीधीनाधीधीना	धि

0 3 ×

पंचमसवारी ताल की चौगुन :–

धीनाधीधीकत	धीधीनाधीधीनातीक	तीनातिरकिटतूनाकता	धीधीनाधीधीना	नाधीधीकतधीधी
×			2	
नाधीधीनातीक्रतीना	तिरकिटतूनाकताधीधी	नाधीधीनाधीना	धीधीकतधीधीनाधी	धीनातीक्रतीनातिरकिट
		0		
तूनाकताधीधीनाधी	धीनाधीनाधीधी	कतधीधीनाधीधीना	तीक्रतीनातिरकिटतूना	कत्ताधीधीनाधीधीना	धि
	3				×

पंचमसवारी ताल की चौगुन एक आवर्तन में :–

1धीनाधीधी	कतधीधीनाधीधीना	तीक्रतीनातिरकिटतूना	कत्ताधीधीनाधीधीना	धि
3				×

पंचमसवारी ताल की आड़ :–

धि ना धिधि	कत धिधि	धीऽना	ऽधीधी	कतधी	धीनाधी	धीनाती	क्रतीना
×	2			0			

तिरकिटतू	नाकता	धीधीना	धीधीना	धि
3				×

पंचमसवारी ताल की कुआड़ :–

धि ना धिधि	धीऽऽऽना	ऽऽऽधीऽ	धीऽकऽत	ऽधीऽधीऽ	नाऽधीऽधी	ऽनाऽतीऽ	क्रऽतीऽना	ऽतिरकिट
×	2				0			

तूऽनाऽक	ऽताऽधीऽ	धीऽनाऽधी	ऽधीऽनाऽ	धि
3				×

पंचमसवारी ताल की बिआड़ :–

धि ना धिधि	कत धिधि	नाधी	123धीऽऽऽ	नाऽऽऽधीऽधी	ऽकऽतऽधीऽ	धीऽनाऽधीऽधी	ऽनाऽतीऽक्रऽ
×	2			0			

तीऽनाऽतिरकि	टतूऽनाऽकऽ	ताऽधीऽधीऽना	ऽधीऽधीऽनाऽ	धि
3				×

3.4.2 दीपचन्दी ताल में लयकारी :–

मात्रा – 14, विभाग – 4, ताली – 1, 4 व 11 पर, खाली – 8 पर

ठेका

धा धिं ऽ	धा धा तिं ऽ	ता तिं ऽ	धा धा धिं ऽ	धा

× 2 0 3 ×

दीपचन्दी ताल की दुगुन :–

धाधिं ऽधा धातिं	ऽता तिंऽ धाधा धिंऽ	धाधिं ऽधा धातिं	ऽता तिंऽ धाधा धिंऽ	धा
×	2	0	3	×

दीपचन्दी ताल की दुगुन एक आवर्तन में :–

धाधिं ऽधा धातिं	ऽता तिंऽ धाधा धिंऽ	धा
0	3	×

दीपचन्दी ताल की तिगुन :–

धाधिंऽ धाधातिं ऽतातिं	ऽधाधा धिंऽधा धिंऽधा धातिंऽ	
×	2	
तातिंऽ धाधाधिं ऽधाधिं	ऽधाधा तिंऽता तिंऽधा धाधिंऽ	धा
0	3	×

दीपचन्दी ताल की तिगुन एक आवर्तन में :–

1धाधिं	ऽधाधा तिंऽता तिंऽधा धाधिंऽ	धा
	3	×

दीपचन्दी ताल की चौगुन :–

धाधिंऽधा धातिंऽता तिंऽधाधा	धिंऽधाधिं ऽधाधातिं ऽतातिंऽ धाधाधिंऽ	
×	2	
धाधिंऽधा धातिंऽता तिंऽधाधा	धिंऽधाधिं ऽधाधातिं ऽतातिंऽ धाधाधिंऽ	धा
0	3	×

दीपचन्दी ताल की चौगुन एक आवर्तन में :–

12धाधिं ऽधाधातिं ऽतातिंऽ धाधाधिंऽ	धा
3	×

दीपचन्दी ताल की आड़ :–

12धा ऽधींऽ ऽऽधा	ऽधाऽ तिंऽऽ ऽताऽ	तिंऽऽ ऽधाऽ धाऽधिं ऽऽऽ	धा
	0	3	×

दीपचन्दी ताल की कुआड :–

1234धा | ऽऽऽधीऽ ऽऽऽऽ ऽधाऽऽऽ धाऽऽऽतिं | ऽऽऽऽ ऽऽताऽऽ ऽतिंऽऽऽ |
2 0

| ऽऽऽऽधा ऽऽऽधाऽ ऽऽधिंऽऽ ऽऽऽऽऽ | धा
3 ×

दीपचन्दी ताल की बिआड :–

धाऽऽऽधीऽऽ | ऽऽऽऽऽधाऽ ऽऽधाऽऽऽतिं ऽऽऽऽऽऽ |
0

| ताऽऽऽतिंऽऽ ऽऽऽऽऽधाऽ ऽऽधाऽऽऽधिं ऽऽऽऽऽऽऽ | धा
3 ×

3.4.3 तीवरा ताल में लयकारी :–

मात्रा – 7, विभाग – 3, ताली – 1, 4 व 6 पर

ठेका

धा	दीं	ता	तिट	कत	गदि	गन	धा
×			2		3		×

तीवरा ताल की दुगुन :–

धादीं	तातिट	कतगदि	गनधा	दींता	तिटकत	गदिगन	धा
×			2		3		×

तीवरा ताल की दुगुन एक आवर्तन में :–

1धा	दींता	तिटकत	गदिगन	धा
2		3		×

तीवरा ताल की तिगुन :–

धादींता	तिटकतगदि	गनधादीं	तातिटकत	गदिगनधा	दींतातिट	कतगदिगन	धा
×			2		3		×

<u>तीवरा ताल की तिगुन एक आवर्तन में :–</u>

12धा	दींतातिट	कतगदिगन	धा
	3		×

<u>तीवरा ताल की चौगुन :–</u>

धादींतातिट	कतगदिगनधा	दींतातिटकत	गदिगनधादीं	तातिटकतगदि	गनधादींता	तिटकतगदिगन	धा
×			2		3		×

<u>तीवरा ताल की चौगुन एक आवर्तन में :–</u>

1धादींता	तिटकतगदिगन	धा
3		×

<u>तीवरा ताल की आड़ :–</u>

धा	दीं	1धाऽ	दींऽता	ऽतिट	कतग	दिगन	धा
×			2		3		×

<u>तीवरा ताल की कुआड़ :–</u>

धा	12धाऽऽ	ऽदींऽऽऽ	ताऽऽऽति	ऽटऽकऽ	तऽगऽदि	ऽगऽनऽ	धा
×			2		3		×

<u>तीवरा ताल की बिआड़ :–</u>

धा	धा	दींऽऽऽ	धाऽऽऽदींऽऽ	ऽताऽऽऽतिऽ	टऽकऽतऽग	ऽदिऽगऽनऽ	धा
×			2		3		×

<u>3.4.4 शिखर ताल में लयकारी :–</u>

मात्रा – 17, विभाग – 5, ताली – 1, 5, 9, 12 व 14वीं पर

<u>ठेका</u>

धा	त्रक	धिन	नक	थुंं	गा	धिन	नक	धुम	किट	तक	धेत्त	ता	तिट	कत	गदि	गन	धा
×				2				3			4		5				×

शिखर ताल की दुगुन :–

धात्रक	धिननक	थुंगा	धिननक	धुमकिट	तकधेत्त	तातिट	कतगदि	गनधा	त्रकधिन	नकथुं
×				2				3		

गधिन	नकधुम	किटतक	धेत्तता	तिटकत	गदिगन	धा
4		5				×

शिखर ताल की दुगुन एक आवर्तन में :–

1धा	त्रकधिन	नकथुं	गधिन	नकधुम	किटतक	धेत्तता	तिटकत	गदिगन	धा
3			4		5				×

शिखर ताल की तिगुन :–

धात्रकधिन	नकथुंगा	धिननकधुम	किटतकधेत्त	तातिटकत	गदिगनधा	त्रकधिननक	थुंगाधिन
×				2			

नकधुमकिट	तकधेत्तता	तिटकतगदि	गनधात्रक	धिननकथुं	गधिननक	धुमकिटतक	धेत्ततातिट
3			4		5		

कतगदिगन	धा
	×

शिखर ताल की तिगुन एक आवर्तन में :–

1धात्रक	धिननकथुं	गधिननक	धुमकिटतक	धेत्ततातिट	कतगदिगन	धा
4		5				×

शिखर ताल की चौगुन :–

धात्रकधिननक	थुंगाधिननक	धुमकिटतकधेत्त	तातिटकतगदि
×			

गनधात्रकधिन	नकथुंगाधिन	नकधुमकिटतक	धेत्ततातिटकत
2			

गदिगनधात्रक	धिननकथुंगा	धिननकधुमकिट	तकधेत्ततातिट
3			4

कतगदिगनधा	त्रकधिननकथुं	गधिननकधुम	किटतकधेत्तता
	5		

तिटकतगदिगन	धा
	×

शिखर ताल की चौगुन एक आवर्तन में :–

123धा	त्रकधिननकथुं	गधिननकधुम	किटतकधेत्तता	तिटकतगदिगन	धा
	5				×

शिखर ताल की आड़ :–

धा	त्रक	धिन	नक	थुं	12धा	ऽत्रक	धिनन	कथुंऽ	गाऽधि	ननक	
×				2				3			
धुमकि	टतक	धेत्तता	ऽतिट	कतग	दिगन	धा					
4		5				×					

शिखर ताल की कुआड़ :–

धा	त्रक	धिन	12धाऽऽ	ऽत्रऽकऽ	धिऽनऽन	ऽकऽथुंऽ	ऽऽगऽऽ	ऽधिऽनऽ	नऽकऽधु	ऽमऽकिऽ	
×				2				3			
टऽतऽक	ऽधेऽत्तऽ	ताऽऽऽति	ऽटऽकऽ	तऽगऽदि	ऽगऽनऽ	धा					
4		5				×					

शिखर ताल की बिआड़ :–

धा	त्रक	धिन	नक	थुं	ग	धिन	12धाऽऽऽत्र		
×				2					
ऽकऽधिऽनऽ	नऽकऽथुंऽऽ	ऽगऽऽऽधिऽ	नऽनऽकऽधु	ऽमऽकिऽटऽ					
3			4						
तऽकऽधेऽत्त	ऽताऽऽऽतिऽ	टऽकऽतऽग	ऽदिऽगऽनऽ	धा					
5				×					

अभ्यास प्रश्न

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. डॉ0 अरूण कुमार ने ..... प्रकार की सवारी बताई हैं।
2. पंचमसवारी में ..... मात्राओं पर ताली है।
3. दीपचन्दी ताल को ..... नाम से भी जाना जाता है।
4. दीपचन्दी ताल में ..... मात्रा पर खाली है।
5. तीवरा ताल दक्षिण भारतीय संगीत की ..... ताल के समान है।
6. तीवरा ताल में ..... का विभाग नहीं होता है।
7. शिखर ताल में ..... मात्राओं पर ताली होती है।
8. शिखर ताल का प्रयोग ..... गायन शैली में संगत के लिए होता है।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप पाठ्यक्रम की तालों को ठेकों एवं उनको विभिन्न लयकारी (दुगन, तिगुन, चौगुन, आड, कुआड़ व बिआड़) में लिपिबद्ध करने के विषय में जान चुके होंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप लयकारी को भली–भांति समझ चुके होंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप लयकारी का प्रयोग अपने वादन(एकल वादन व संगत) में करने में सक्षम होगे जिससे आपका वादन प्रभावशाली होगा। इससे आप लयकारी को बोलने एवं बजाने में भी सक्षम होंगे। तबले की तालों के ठेकों को विभिन्न लयकारी में लिपिबद्ध करने एवं उसके क्रियात्मक स्वरूप को तबले में प्रस्तुत कर पायेंगे।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. 18
2. 1, 4 व 12 पर
3. चांचर
4. 8 पर
5. मिश्र जाति के त्रिपुट ताल
6. खाली
7. 1, 5, 9, 12 व 14वीं पर
8. ध्रुपद गायन शैली

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वसन्त, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. मिश्र, पं0 विजयशंकर, तबला पुराण, कनिष्क पब्लिशर्स, दिल्ली।
3. श्रीवास्तव, श्री गिरीश चन्द्र, *ताल परिचय,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।

3.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम की किन्हीं दो तालों के ठेकों को दुगुन, तिगुन, चौगुन, आड़, कुआड व बिआड सहित लिपिबद्ध कीजिए।